महर्षि दयानन्द सरस्वती की उत्तराधिकारिणी परोपकारिणी सभा का मुख पत्र

वर्ष : ६० **अंक** : २०

दयानन्दाब्द: १९४

विक्रम संवत्: आश्विन शुक्ल २०७५

कलि संवत्: ५११९

सृष्टि संवत्: १,९६,०८,५३,११९

सम्पादक

डॉ. दिनेशचन्द्र शर्मा

प्रकाशक-परोपकारिणी सभा,
केसरगंज, अजमेर- ३०५००१
दूरभाष: ०१४५-२४६०१६४

मुद्रक-श्री मोहनलाल तँवर
वैदिक यन्त्रालय, अजमेर।
दूरभाष : ०१४५-२४६०८३१

परोपकारी का शुल्क

भारत में

वार्षिक-२०० रु., **द्विवार्षिक**-३९० रु.
त्रिवार्षिक-५८० रु.
आजीवन (१५ वर्ष)-२००० रु.
एक प्रति - १५/- रु.

विदेश में

वार्षिक-५० यू.के. पाउण्ड/८० यू.एस.डॉलर
द्विवार्षिक-९५ पाउण्ड/१५२ डॉलर
त्रिवार्षिक-१४० पाउण्ड/२२५ डॉलर
आजीवन (१५वर्ष)-५००पा./८०० डॉ.
एक प्रति - ३ पाउण्ड
एक प्रति - ४ डॉलर

वैदिक पुस्तकालय : ०१४५-२४६०१२०
ऋषि उद्यान : ०१४५-२६२१२७०

ओ३म्

विद्याविलासमनसो धृतशीलशिक्षा:,
सत्यव्रता रहितमानमलापहारा:।
संसारदु:खदलनेन सुभूषिता ये,
धन्या नरा विहितकर्म परोपकारा:।।

RNI. No. ३९५९ / ५९

परोपकारी

अक्टूबर द्वितीय २०१८

अनुक्रम

०१. विवाहेतर संबंधों की मान्यता का औचित्य?		०४
०२. मृत्यु सूक्त-१६	डॉ. धर्मवीर	०६
०३. १३५ वाँ ऋषि बलिदान समारोह		०८
०४. कुछ तड़प-कुछ झड़प	प्रा. राजेन्द्र 'जिज्ञासु'	०९
०५. वेदगोष्ठी-२०१८		१३
०६. कड़वी सच्चाइयाँ	प्रो. रामदेव आचार्य	१५
०७. महर्षि दयानन्दोत्तर आर्यसमाज...	जगदेव विद्यालंकार	२०
०८. महापण्डित श्री ब्रह्मदत्त जिज्ञासु...	प्रशस्यमित्र शास्त्री	२२
०९. वैदिक पुस्तकालय के नये संस्करण		२५
१०. शङ्का समाधान- ३५	डॉ. वेदपाल	२६
११. मधुरभाषी पं. बुद्धदेव जी मीरपुरी	राजेन्द्र 'जिज्ञासु'	२८
१२. पाठकों के विचार		३०
१३. मैं ऋषि का आदर क्यों करता हूँ?	ज़हूर बख़्श	३५
१४. प्रतिभा की तलाश	प्रभाकर	३९
१५. आर्यजगत् के समाचार		४२

www.paropkarinisabha.com
email : psabhaa@gmail.com

उपनिषद्, दर्शन, प्रवचन आदि सुनने हेतु बटन दबाएँ
www.paropkarinisabha.com → Daily Pravachan

लेख में प्रकट किए विचारों के लिए सम्पादक उत्तरदायी नहीं है। किसी भी विवाद की परिस्थिति में न्यायक्षेत्र अजमेर ही होगा।

सम्पादकीय

विवाहेतर संबंधों की मान्यता का औचित्य?

वैदिक संस्कृति में विभिन्न मानवीय संबंधों को अत्यन्त गरिमामय और यथार्थ धरातल प्रदान किया गया है। संस्कारों के माध्यम से समाज में सुख व शांति के प्रसार की सुन्दर व्यवस्था ऋषियों द्वारा उपस्थित की गई है। हमें यह ज्ञात है कि विभिन्न मनोदशाओं में सामाजिक प्राणियों के व्यवहार भिन्न होते हैं और तदनुसार उनका समाज पर प्रभाव भी पड़ता है। वे व्यवहार उच्च हों और संपूर्ण समाज व प्राणिजगत् के लिए वे उपयोगी व लाभकर हों, ऐसी व्यवस्था ऋषियों ने प्रदान की है। संस्कारों के अभाव में किसी भी वस्तु व प्राणी के व्यवहार सुकर नहीं होते हैं एवं वे समाज के लिए लाभकर भी नहीं होते हैं, अतः एव विभिन्न संस्कारों का महत्त्व सुविदित होता है। विवाह भी ऐसा ही संस्कार है, जो मानवीय व्यवहारों को उच्छृंखल नहीं होने देता एवं पशुवत् यौन व्यवहारों को अनुशासित कर सामाजिक अराजकता को रोकता है। इस प्रकार काम-व्यवहार की उपस्थिति को स्वीकार करते हुए भी मनुष्य यौनिक उन्मुक्तता पर अंकुश रख पाते हैं एवं उसे मोक्ष-मार्ग में सहायक बना लेते हैं। इसके लिए यह आवश्यक होता है कि स्त्री-पुरुष परस्पर प्रतिद्वन्द्वी रूप में सम्मुख न होकर, पूरक के रूप में अपनी भूमिका का निर्वाह करें, परस्पर सम्मान एवं उदात्त भावनाओं के साथ जीवन-निर्वाह करें। विवाह संस्कार में प्रयुक्त विभिन्न वेदमंत्रों में ऐसी ही सुन्दर भावनाएँ व्यक्त की गई हैं। परिवार, समाज व सांस्कृतिक मान्यताओं व विचारों की निरन्तरता व शुद्धता बनाए रखने के लिए स्त्री-पुरुष एक परिपूर्ण युगल एवं सामाजिक इकाई के रूप में हमारे सम्मुख होते हैं। वे परस्पर निष्ठा, पवित्रता एवं लोकोपकारी व्यवहारों की प्रतिज्ञा लेते हुए वैवाहिक बंधन में बँधते हैं तथा वेदोक्त मर्यादाओं का पालन करते हुए सामाजिक आदर्श स्थापित करते हैं।

स्पष्ट है कि इस युगल में समानता का भाव रहता है, दोनों में कोई भी ऊँचा-नीचा नहीं होता। गृहस्थ-जीवन की गाड़ी में समता भी दोनों ओर सन्तुलन होने से ही हो सकती है। जहाँ यह सन्तुलन बिगड़ता है, वहाँ सफलता प्राप्त नहीं हो पाती। परस्पर अविश्वास, अहम्मन्यता की प्रबल भावना, कामोन्मुक्तता के कारण उच्छृंखल व्यवहार, दोनों में समान लक्ष्य का अभाव, पारिवारिक व सामाजिक दायित्वों को धार्मिक कर्त्तव्य न समझने के कारण स्त्री-पुरुष-संबंधों का संतुलन बिगड़ जाता है और सामाजिक, धार्मिक अधोपतन प्रारम्भ हो जाता है। ऐसी स्थिति में आवश्यक यह होता है कि एक स्वस्थ समाज, विधिक व्यवस्थाएँ और धार्मिक संस्थाएँ युगल-व्यवहार को संयमित करें, अन्यथा समाज विघटन की ओर बढ़ेगा और विनष्ट होगा।

खेद है कि पिछले दिनों हमारी विधिक व्यवस्था के सर्वोच्च प्रतीक उच्चतम न्यायालय की पीठ ने स्त्री-पुरुष-संबंधों के मामले में निर्णय देते हुए समाज को मर्यादित एवं संयमित करने की व्यवस्था देने के बजाय उन्हें अधिकारों के नाम पर परिवार-विरोधी विवाहेतर संबंध बनाने के लिए प्रोत्साहित-सा किया है। सर्वोच्च न्यायालय ने '**एडल्ट्री**' को अपराध घोषित करने के विषय में संविधान की आईपीसी की धारा 497 को समाप्त कर विवाहेतर संबंधों को आपराधिक श्रेणी से निकाल दिया है। आश्चर्य का विषय यह है कि मुख्य न्यायाधीश सहित चार पुरुषों व एक महिला अर्थात् 5 जजों की पीठ ने यह निर्णय दिया है। प्रश्न उठता है कि क्या विवाहेतर संबंधों के विषय में यह तथाकथित बुद्धिजीवियों, एक्टिविस्टों की सोची समझी चाल है कि पहले **लिव इन रिलेशन** को कानूनी वैधता दिलवायी और उसकी अगली कड़ी में यह निर्णय हो गया।

हमारा इतिहास और कुछ परम्पराएँ यह अवश्य बताती हैं कि पूर्व में पुरुषों ने असंयमित व्यवहार करते हुए यौनिक या काम संबंधों में उच्छृंखल व्यवहार किया एवं वैवाहिक संबंधों में स्त्रियों के साथ अन्याय किया, विवाहेतर संबंध बनाए। परन्तु पुरुष के ऐसे व्यवहारों को धार्मिक एवं सामाजिक दृष्टि से कभी अनुकरणीय या श्रेष्ठ नहीं माना गया। शास्त्रकारों ने '**एकपत्नीव्रती**' या '**पतिव्रता**' शब्दानुसार व्यवहार को ही श्रेष्ठ माना। इससे भी अधिक बढ़कर विवाहित स्त्री-पुरुषों को एक निश्चित वय के पश्चात् ब्रह्मचर्यपूर्वक रहने का उपदेश देना स्वयं इस प्रकार के कामुक संबंधों के निषेध को प्रकट कर रहा है। यहाँ यह भी ध्यान देने योग्य है कि वैवाहिक संबंधों का उद्देश्य मात्र शारीरिक संबंध नहीं है, प्रत्युत उसमें मोक्षकामी पवित्रता का सात्त्विक लक्ष्य भी समाहित है। ऐसे में मात्र शारीरिक संबंधों पर व्यवस्था को केंद्रित कर देने वाला व्यवहार अत्यंत घृणास्पद और गर्हित प्रतीत होता है एवं मान्य नहीं है। हमारे लक्ष्य परमोच्चता की ओर ले जाने को हों, नीचे गिराने वाले न हों। इस प्रकार तो पतन की कोई सीमा ही नहीं होगी।

जहाँ तक स्त्री-पुरुष-संबंधों और व्यवहारों में समानता के अधिकार का प्रश्न है, तो हम जानते हैं कि मनुस्मृति, महाभारत, वेदादिशास्त्रों तथा अन्यान्य भारतीय ग्रंथों में नारी सर्वोच्च आसन पर पदासीन की गई है। बोधायन और याज्ञवल्क्य इत्यादि के

ग्रन्थों में अगर प्रक्षिप्त मान्यताओं को विलग कर दिया जाए तो भी लोकमत नारी के सम्मान और उसके महत्त्व को सर्वथा स्वीकार करता रहा। मनुष्य सामाजिक प्राणी है, इसलिए देश और काल के अनुसार उसकी बाह्य मान्यताएँ तो परिवर्तित हो सकती हैं, लेकिन सनातन सत्य से समाज विमुख नहीं हो सकता।

विवाह से पूर्व ही नारी को शिक्षा का मूलभूत अधिकार प्राप्त था और उन्हें यज्ञकर्म में पुरुषों के समान अधिकार भी प्राप्त था। मनु ने इसीलिए स्त्रियों के यज्ञोपवीत संस्कार और वेदादि अध्ययन के विवरण का वर्णन किया है। सारत: यह कहना ठीक होगा कि भारतीय संस्कृति के मूल में नारी की मर्यादा और उसकी सर्वोच्चता निर्विवाद रही है।

अत: सर्वोच्च न्यायालय द्वारा विवाहेतर संबंधों को अपराध की धारा से मुक्त करने का निर्णय देकर भारत की सनातन संस्कृति पर जैसे कुठाराघात कर दिया गया है। स्वतंत्रता के नाम पर पुरुषों के बराबर अधिकार की थोथी मान्यता को कोई भी विकसित समाज स्वीकार नहीं कर सकता। सर्वोच्च न्चायालय का निर्णय यद्यपि विवेकशील न्यायाधीशों का निर्णय है, लेकिन भारतीय संदर्भों में इसका औचित्य समाज के मूल्यों को दूर तक प्रभावित करेगा। क्योंकि इससे नैतिकता की परिभाषा, चाहे वह नर के साथ हो चाहे नारी के साथ, दोनों ही संदर्भों में सर्वथा अस्वीकार्य रहेगी। विवाह भारतीय संस्कृति में जीवन के परम पुरुषार्थ को प्राप्त करने का माध्यम है। इसलिए वेदादिशास्त्रों में विवाह के मंत्रों में पुरुष-नारी दोनों के लिए अधिकार भी हैं और कर्तव्य भी।

विवाहेतर संबंधों में मनुष्य की काम-वासना का अधिकार पुरुष और नारी को समान रूप में देना और उन्हें विवाह-विच्छेद के लिए तो स्वीकार करना, लेकिन अपराध की प्रवृत्ति से मुक्त करना यह विवेकसम्मत नहीं कहा जा सकता। महात्मा गांधी ने कहा था, **'यदि मैं स्त्री के रूप में जन्मा होता तो पुरुष के इस दंभ के विरुद्ध कि स्त्री पुरुष के मनोरंजन की वस्तु है, विद्रोह कर देता।'** यह कथन निश्चय ही गांधी जी के द्वारा नारी के अधिकारों और उसके महत्त्व को बहुआयामी बना देता है। यह शास्त्रसम्मत भी है। उन्होंने एक स्थान पर कहा था कि, **'स्त्री की पवित्रता के बारे में दूषित मनोवृत्ति का परिचय देने वाली यह सारी चिन्ता किसलिए है? क्या पुरुष को पवित्रता के नियमन का अधिकार अपने हाथ में लेना चाहिए? वह पवित्रता बाहर से नहीं लादी जा सकती। वह ऐसी वस्तु है, जिसका विकास भीतर से होता है और जिसके लिए व्यक्ति को स्वयं ही प्रयत्न करना होता है।'** यही हमारे धर्म में नैतिकता, अनुशासन, संयम इत्यादि शब्दों द्वारा व्यक्त किया गया है।

विवाहेतर संबंधों को अपराधी प्रवृति का न मानकर, भले ही वह आपसी समझौते के आधार पर बने हों, क्या ऐसा निर्णय देकर विवाह विच्छेद की अनवरत श्रृंखला को पोषित नहीं किया जाएगा? क्या इस प्रकार परिवार तोड़ने का बीजारोपण नहीं होगा? ऐसे माता-पिता के बच्चों का भविष्य किस प्रकार निर्मित होगा? क्योंकि ऐसे संबंधों से परिवार की मर्यादा और शांति, तथा समाज की भी, भंग अवश्य होगी।

मुझे जर्मन दार्शनिक इमेनुअल कांट के जीवन की घटना अनायास याद हो आती है जब पिता, बहन और भाइयों को छोड़कर उनकी माँ ने अन्य पुरुष के साथ विवाह कर लिया था तब किस प्रकार कांट के मन में नारी के विरुद्ध विचारों ने जन्म लिया और वह जीवनपर्यन्त कठोर नैतिक दर्शन का हामी बना रहा। उसकी नैतिकता में कर्तव्य कर्त्तव्य के लिए तो है, लेकिन कर्तव्य वात्सल्य व घृणा से ग्रसित नहीं होना चाहिए। इस सिद्धान्त को उसने प्रतिपादित किया, क्योंकि परिवार में बच्चों के बाल-मन में अनेक प्रश्नों का समाधान केवल इसलिए नहीं किया जा सकता कि विवाहेतर संबंधों के कारण उसके पिता को तलाक लेना पड़ा है। क्या इसकी भरपाई सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के आधार पर की जा सकती है? यह समझ के परे है।

महर्षि दयानन्द और आर्यसमाज इस मान्यता को स्वीकार करता है कि पुरुष या स्त्री में किसी को भी स्वेच्छाचारी नहीं होना चाहिए- **स्वैरी स्वैरिणी कुत:।** साथ ही, वेदोपदेश यह है कि स्त्री पत्नी के रूप में विभिन्न पारिवारिक संबंधों की अधिष्ठात्री है एवं घर में अन्यों से उच्च स्थान पर अधिष्ठित है-

सम्राज्ञी श्वशुरे भव सम्राज्ञी श्वश्रूवां भव।
ननान्दरि सम्राज्ञी भव सम्राज्ञी अधिदेवृषु।।

(ऋग्वेद)

भारतीय सामाजिक ढांचा जिन मूल्यों पर निर्भर है उनमें पुरुषों की सर्वोच्च सत्ता को इस रूप में स्वीकार नहीं किया गया कि वह महिला को अपनी जागीर समझे। वैदिक संस्कृति में यह तत्त्व कहीं भी उल्लिखित नहीं हुआ है। पुरुष और नारी की समानता ही विवाह की मूल आधारशिला है। पाश्चात्य जगत् में भले ही विवाहेतर संबंधों को कानूनी और समाजिक मान्यता मिली हो, लेकिन भारत में यह किसी प्रकार भी स्वीकार नहीं की जा सकती, भले ही सर्वोच्च न्यायालय ने निर्णय दे दिया हो। क्योंकि सामाजिक स्वीकार्यता स्वयं में न्याय प्रक्रिया का अविभाज्य अंग बन जाती है। - **दिनेश**

मृत्यु सूक्त-१६

प्रवचनकर्त्ता- डॉ. धर्मवीर
लेखिका - सुयशा आर्या

परं मृत्यो अनुपरेहि पन्थां, यस्ते स्व इतरो देवयानात्।
चक्षुष्मते शृण्वते ते ब्रवीमि, मा नः प्रजां रीरिषो मोत वीरान्।।

हम ऋग्वेद के दशम मंडल के मृत्यु-सूक्त पर चर्चा कर रहे हैं। इसका देवता मृत्यु है और हमने पिछले प्रसंग में मृत्यु के संबन्ध में श्रीकृष्ण जी के विचारों को देखते हुए मृत्यु के स्वरूप पर बात की थी। पिछली चर्चा में हमने देखा कि मृत्यु कहते ही दो चीजें हमारे सामने आती हैं। एक चीज एक ही रूप में होती हुई मृत्यु के कारण से दो दिखाई देने लगती हैं। वो कैसे? हमें एक प्राणी, एक मनुष्य जीवित दिखाई दे रहा है, लेकिन जैसे ही मृत्यु होती है उसमें से जीवन तो चला जाता है, प्राणी का शरीर शेष रहता है। उस दिन हमें ऐसा लगता है कि ये दो मिलकर एक थे, एक नहीं था। यदि एक ही होता तो अभी भी वैसा ही रहता, लेकिन यह जैसा पहले था वैसा नहीं रहा जबकि एक भाग इसका बिल्कुल पूरा है, यथावत् है। उसके यथावत् रहने के बाद भी इसमें परिवर्तन है तो वो परिवर्तन किसी और कारण से था। वो कारण 'जो नहीं रहा' वही हो सकता है, वो है चेतना, जीवन। प्रारम्भ से ये दो ही चीजें हैं- एक जीवन है, एक जड़ है। ये दोनों बिल्कुल अलग-अलग हैं और अलग ही मूल रूप से हैं, इसलिए गीता की जो पंक्ति है **'नासतो विद्यते भावो, नाभावो विद्यते सतः। उभयोरपि दृष्टोऽन्तस्त्वनयोस्तत्त्वदर्शिभिः।'** ज्ञानी लोगों ने इस बात को अच्छी तरह से समझा है, जाना है, देखा है, वही लोगों को बताते भी हैं और वो यह है कि हम जो भी देख रहे हैं उनकी सत्ता पृथक्-पृथक् है और जिसकी एक बार सत्ता हम प्रमाणित कर लेते हैं, देख लेते हैं, उसमें बदलाव नहीं आता।

अब 'बदलाव नहीं आता' जब हम कहते हैं तो इनमें एक में तो बदलाव कहीं देखते हैं और दूसरे में नहीं देखते। इसको समझने के लिए हमारे यहाँ दार्शनिकों ने कुछ शब्द बनाए हैं जिनसे इस व्यवस्था को समझा जा सकता है। वो कहते हैं कि एक स्वरूप से अनादि है और एक प्रवाह से अनादि है। अनादि दोनों हैं, अर्थात् कभी पैदा नहीं हुए हैं, सदा से हैं, सदा रहेंगे। चेतना के रूप में चेतना सदा है, वह भी उत्पन्न नहीं हुई है, ना समाप्त होगी और इसी तरह से दूसरी जो चेतन सत्ता है, जिसको हम ईश्वर कहते हैं वो भी स्वरूप से अनादि है। दो चीजें स्वरूप से अनादि हैं, अर्थात् उनमें कभी भी किसी भी तरह का परिवर्तन नहीं होता, इसलिए जीवात्मा में कोई परिवर्तन नहीं होता और परमात्मा में भी कोई परिवर्तन नहीं होता। जो परिवर्तन हो रहा है वह जड़ वस्तुओं में हो रहा है, उसको परिवर्तन होते हुए हम देख रहे हैं। कैसे देख रहे हैं? कोई वस्तु दिखाई दे रही है, कोई नहीं दिखाई दे रही है, कभी दिखाई दे रही है, कभी नहीं दिखाई दे रही है। इसलिए इसको अनादि तो माना किन्तु, यह प्रवाह से अनादि है। इसका रूप बदलता रहता है-कभी यह सूक्ष्म है, कभी स्थूल है, कभी संघात के रूप में है, कभी विभाजन के रूप में है, वह निरन्तर एकरूप नहीं है, लेकिन वह है। इसलिए सत्ता है तो परिवर्तन कहाँ हो रहा है। परिवर्तन जीवात्मा में तो हो नहीं सकता क्योंकि वह स्वरूप से अनादि है और जिसमें परिवर्तन हो रहा है, वह परिवर्तन सदा नहीं रहता है, मूल कारण से बाहर जाता ही नहीं है। वह कभी स्थूल हो जाता है, कभी सूक्ष्म हो जाता है, कभी कारण में चला जाता है लेकिन बना तो रहता है, उसका परिवर्तन अस्थायी है, वैसे ही यह जो परिवर्तन हो रहा है, जन्म के रूप में या मृत्यु के रूप में, यह परिवर्तन उसमें नहीं हो रहा है जो स्वरूप से अनादि है। यह परिवर्तन उसमें हो रहा है जो प्रवाह से अनादि है। जो प्रवाह से अनादि है वह प्रकृति है, तो आत्मा और प्रकृति का जो संबन्ध है उसे हम जीवन कहते हैं, प्राण कहते हैं। इसमें जो परिवर्तन हो रहा है वह परिवर्तन प्रकृति के रूप में हो रहा है, शरीर में हो रहा है। तो यह परिवर्तन मात्र है, आप उसके नाम अलग-अलग रखते हैं और यह परिवर्तन जब प्रकृति में होता है, तब आप उसे केवल परिवर्तन कहते हैं, विनाश कहते हैं, निर्माण कहते हैं और प्रकृति का जो अंश शरीर के रूप में है उसमें इस परिवर्तन को आप जन्म कहते हैं, मृत्यु कहते हैं।

श्रीकृष्ण अर्जुन को एक बात समझा रहे हैं-वो कहते हैं कि जन्म को, मृत्यु को एक अलग चीज़ क्यों मान रहा है? श्रीकृष्ण कहते हैं, जैसे शरीर में बाल्यावास्था है, युवास्था है, वृद्धावस्था है, यह भी तो परिवर्तन है, यह भी तो बदलाव है। इन बदलावों को लेकर मेरे मन में कभी खेद या दुःख तो नहीं

होता। जो शरीर कभी शिशु, बालक रहा है वही शरीर कभी युवा बन जाता है और वह शरीर जब युवा बन जाता है तो दूसरे शब्दों में यही तो कहना पड़ता है कि उसकी बाल्यावस्था की मृत्यु हो गई। लेकिन इस मृत्यु से न तो कोई प्रभावित होता है, न कोई दु:खी

होता है। जैसे बाल्यावस्था से युवावस्था आ गई, युवावस्था भी कालान्तर में जाकर समाप्त हो जाती है, तब वृद्धावस्था आ जाती है। वो वृद्धावस्था तभी आती है, जब युवावस्था की मृत्यु हो जाती है, समाप्ति हो जाती है, लेकिन उस समय भी हम नहीं रोते, उस समय भी हम मृत्यु का दु:ख नहीं मनाते। श्रीकृष्ण जी यह कहते हैं कि जैसे इस शरीर का बाल्यावस्था से युवावस्था में परिवर्तन है और युवावस्था का वृद्धावस्था में परिवर्तन है, मात्र उतना ही परिवर्तन मृत्यु और जन्म में है, वो भी शरीर के साथ सामान्य रूप से घटने वाली घटना है, उसको भी उतने ही सहज भाव से लेना चाहिए क्योंकि यह परिवर्तन, जो प्रकृति का अंश है, उसमें हो रहा है, यह उसमें नहीं हो रहा है जो चेतना का अंश है, क्योंकि वह स्वरूप से अनादि है, उसमें परिवर्तन है ही नहीं, होता ही नहीं है। चेतन बाल्यावस्था में भी वैसा ही था, युवावस्था में भी वैसा ही था, वृद्धावस्था में भी वैसा ही था। वो शरीर के साथ होता है तो भी वैसा ही होता है और शरीर से बाहर रहता है तो भी वैसा ही होता है। इसलिए यह परिवर्तन केवल शरीर से होते हैं। यही परिवर्तन मात्र उसका जन्म का और उसकी मृत्यु का होता है। यह उतना ही सहज है, उतना ही सामान्य है, उतना ही स्वाभाविक है।

इस बात को समझाते हुए वो कहते हैं कि यह जो जन्म है उसकी चेतना के साथ वृद्धि भी अवश्यंभावी है, वृद्धि है तो ह्रास भी होगा और जन्म है तो विनाश भी होगा। यदि, आप ऐसा समझ लेंगे तो इस एकपक्षीय परिवर्तन से, परिवर्तन के परिणाम से आपको किसी प्रकार का कष्ट नहीं होगा, दु:ख नहीं होगा, परेशानी नहीं होगी। यह बात हमारी समझ में आ सकती है। इसके लिये उन्होंने बहुत सुन्दर पंक्तियाँ इस प्रकरण को समझाने के लिए लिखी हैं। वे लिखते हैं- **वासांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि। तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि संयाति नवानि देही**। शायद इससे सरल और सामान्य कोई उदाहरण नहीं हो सकता जिससे समझाया जा सके। श्रीकृष्ण अर्जुन से कह रहे हैं कि तू इनके मरने से डरता क्यों है? यह शरीर तो आत्मा के लिए एक आवरण मात्र है, एक वस्त्र की तरह से है और वस्त्र भी किसी कारण से नष्ट भी हो जाता है, पुराना हो कर नष्ट हो जाता है, फटने से नष्ट हो जाता है, किसी कारण जल जाता है, ऐसी स्थिति में हमें कोई बहुत दु:ख नहीं होता और विशेष रूप से जब वस्त्र पुराना हो जाए, जीर्ण हो जाए, गल जाए और उसकी जगह कोई हमें सुन्दर नया वस्त्र दे दे तो मनुष्य उस पुराने वस्त्र को छोड़ते हुए किसी तरह का कष्ट, दुविधा अनुभव नहीं करता। बहुत ही प्रेम से नए को ग्रहण कर लेता है और पुराने को छोड़ देता है।

हमारे जो बालक हैं उनको यदि आप कितना भी नया कपड़ा दें और दो दिन बाद और नया ले आएं तो वो पुराने को फेंकने में तनिक भी देर नहीं लगाते। उसी तरह से **वासांसि जीर्णानि यथा विहाय**, कृष्ण कहते हैं कि जैसे पुराने, गले हुए वस्त्रों को मनुष्य छोड़ देता है, **नवानि गृह्णाति नरोपराणि**, मनुष्य नए वस्त्रों को प्रेम से, उत्साह से स्वीकार कर लेता है, सहजता से ले लेता है तथा **शरीराणि विहाय जीर्णानि अन्यानि संयाति नवानि देही**-उसी प्रकार जैसे एक मनुष्य पुराने गले, सड़े, फटे, जले कपड़ों को छोड़कर के नए कपड़ों को स्वीकार कर लेता है, वैसे ही (मनुष्य) इन पुराने शरीरों को छोड़कर नए शरीर ग्रहण करने के लिए आगे चला जाता है। वे कहते हैं कि तू यदि यह सोचकर रो रहा है कि इनको मारना नहीं चाहिए, तो पहले तो इसलिए मारना चाहिए कि इन्होंने अनुचित किया है, अन्याय किया है, अपराध किया है और अपराध के कारण ये दंडनीय हैं और तू यदि यह सोचता हो कि ये मर जायेंगे, तो इनको केवल दंड मिलेगा पर ये समाप्त नहीं होने वाले, समाप्त तो केवल शरीर होता है और यह शरीर दोबारा भी मिल जाता है और दोबारा जैसा आज है उससे अच्छा मिल जाता है।

इसलिए यह जो सोच है, जिसके लिए हम दु:खी होते हैं कि यह व्यक्ति मर गया, कहता है तो दु:खी होने की आवश्यकता नहीं है। **वासांसि जीर्णानि यथा विहाय**, क्योंकि पुरानी चीज़ को कोई भी मनुष्य नई वस्तु मिलने पर बड़े सहज भाव से छोड़ देता है, बिना किसी आग्रह के छोड़ देता है बल्कि प्रसन्नता से छोड़ देता है। तो **नवानि गृह्णाति नरोपराणि**, ये जो मानसिकता है तथा यह जो सोच है कि यह चीज बेकार हो गई, मेरे लिए पुरानी हो गई, अनुपयोगी हो गई, यह सोच मेरी वस्त्रों के साथ है, वस्तुओं के साथ है, घर के साथ है और पदार्थों के साथ है। श्रीकृष्ण जी कह रहे हैं कि जैसे और पदार्थों के साथ है, शरीर भी तो वैसा ही पदार्थ है, वैसी ही भौतिक वस्तु है, तो इनमें तुझे वह सोच लाने में क्या कठिनाई है? यह भी तो बिल्कुल वैसी ही चीज़ है, यह भी तो जीवात्मा के उपयोग के लिए मिली हुई एक वस्तु है और इस वस्तु को बदलने में कोई कष्ट नहीं होना चाहिए। इस दृष्टि से हमें मृत्यु एक वस्तु को छोड़कर दूसरी वस्तु को लेने जैसा एक सामान्य परिवर्तन जैसा है। इस बात को इन पंक्तियों से स्पष्ट किया गया है।

परोपकारिणी सभा, अजमेर के तत्त्वावधान में
१३५ वाँ ऋषि बलिदान समारोह
दिनांक १६, १७, १८ नवम्बर २०१८, शुक्र, शनि, रविवार

महापुरुषों का यज्ञमय जीवन हमको प्रत्येक कदम पर प्रेरणा व मार्गदर्शन देता रहता है, जिस कारण हम उनके ऋणी हो जाते हैं। इस ऋण से मुक्त होने का एक ही उपाय है- महापुरुषों की विचारधारा का यथासामर्थ्य प्रचार-प्रसार। विराट व्यक्तित्त्व महर्षि दयानन्द की समग्र मानव जाति ऋणी है। इस ऋण को चुकाने का स्वर्ण-अवसर ऋषि के १३५वें बलिदान वर्ष के उपलक्ष्य में हमको प्राप्त हुआ है। इस अवसर पर परोपकारिणी सभा भव्य समारोह का आयोजन करने जा रही है।

ऋग्वेद पारायण यज्ञ- 'ऋग्वेद पारायण यज्ञ' की पूर्णाहुति बलिदान समारोह के अन्तिम दिन १८ नवम्बर को प्रातः १० बजे होगी। यज्ञ के ब्रह्मा आर्यजगत् के प्रतिष्ठित विद्वान् डॉ. विनय विद्यालंकार होंगे।

वेदगोष्ठी - प्रतिवर्ष की परम्परा के अनुसार इस वर्ष भी अन्तर्राष्ट्रीय दयानन्द वेदपीठ दिल्ली एवं अनुसन्धान केन्द्र परोपकारिणी सभा के संयुक्त प्रयास से वेदगोष्ठी का आयोजन किया जायेगा। इस गोष्ठी में देश के विविध विद्वान् अपने शोधपूर्ण मौलिक विचार प्रस्तुत करेंगे। इस वर्ष वेदगोष्ठी का विचारणीय बिन्दु है- **षड्दर्शनों की वेदमूलकता और महर्षि दयानन्द।** जो विद्वान् गोष्ठी में शोधपत्र प्रेषित करना चाहते हैं, वे १० नवम्बर तक सभा के पते पर प्रेषित करवा देवें। १६, १७, १८ नवम्बर को ऋषि बलिदान समारोह के कार्यक्रमों के साथ-साथ वेदगोष्ठी भी चलती रहेगी। ऋषि-भक्त इसे सुनने का लाभ उठा सकते हैं।

चतुर्वेद कण्ठस्थीकरण वेद प्रतियोगिता- प्रतिवर्ष आयोजित की जाने वाली इस प्रतियोगिता में २१ वर्ष तक के छात्र भाग ले सकते हैं। किसी भी वेद को आद्योपान्त स्मरण करके इस प्रतियोगिता में भाग लिया जा सकता है। जो छात्र जिस वेद पर गत वर्षों में पारितोषिक ग्रहण कर चुके हैं, वे उस वेद से अतिरिक्त वेद स्मरण करके भाग ले सकते हैं। १६ नवम्बर को परीक्षा एवं १७ नवम्बर को पुरस्कार-वितरण का कार्यक्रम होगा। जो छात्र इस प्रतियोगिता में भाग लेना चाहते हैं, वे अपने-अपने गुरुकुलों, आश्रमों, संस्थानों से आचार्य द्वारा अधिकृत पत्रक पर २-छायाचित्र सहित अपना परिचय १० नवम्बर, २०१८ तक आचार्य महर्षि दयानन्द आर्ष गुरुकुल, ऋषि उद्यान, अजमेर के पते पर भेज दें।

सम्मान - प्रतिवर्ष विशिष्ट वैदिक विद्वान्, विदुषियों एवं कार्यकर्त्ताओं को इस समारोह में सम्मानित किया जाता है। इस वर्ष भी सम्मान -समारोह होगा। जिसमें अनेक विद्वान्-विदुषियों एवं कार्यकर्त्ताओं को सम्मानित किया जायेगा।

नवम्बर के आरम्भ में अजमेर में हल्की ठंड होने लगती हैं, ऋषि उद्यान खुले में होने से सर्दी का प्रभाव कुछ अधिक रहेगा। रात्रि में कम्बल ओढ़ने जैसी ठण्ड रहेगी। जो समूह में रहना चाहते हैं उनकी निवास व्यवस्था ऋषि उद्यान में होगी और जो अपने निवास की व्यवस्था होटल-धर्मशाला में करवाना चाहते हैं, कृपया वे सभा कार्यालय से पूर्व सम्पर्क कर अग्रिम राशि जमा करवा कर कमरा आरक्षित करवा लें। सभी से विशेष निवेदन है कि अपने आने की सूचना कम से कम एक सप्ताह पूर्व दे देवें, जिससे संख्या का अनुमान होकर तदनुसार व्यवस्था की जा सके। सभी से निवेदन है कि १३५वें बलिदान समारोह में अपने परिवार व समाज के सभी कार्यकत्ताओं सहित पधार कर महर्षि को हार्दिक श्रद्धांजलि प्रदान करें, महर्षि दयानन्द के स्वप्न को साकार करने हेतु प्रेरणा उत्साह प्राप्त कर प्रचार-प्रसार को एक नई चेतना प्रदान करें।

ऋषि मेले में आमन्त्रित विद्वान् एवं विशिष्ट अतिथि- प्रा. राजेन्द्र जिज्ञासु-अबोहर, श्री सुरेश अग्रवाल-प्रधान सार्वदेशिक सभा, श्री सत्यपालसिंह-केन्द्रीय शिक्षा राज्यमन्त्री, डॉ. ब्रह्ममुनि-महाराष्ट्र, श्री सोमपाल शास्त्री- पूर्व केन्द्रीय कृषि मन्त्री, श्री अरुण कुमार 'आर्यवीर', श्री जगदीश शर्मा-जयपुर, श्री शिवकुमार चौधरी-इन्दौर, श्री जयदेव आर्य-राजकोट, श्री ठा. विक्रमसिंह-दिल्ली, श्री प्रकाश आर्य-महू, श्री प्रियव्रतदास एवं श्रीमती शन्नो देवी-भुवनेश्वर, श्री विद्यामित्र ठुकराल-दिल्ली, श्री ओमप्रकाश गोयल-पानीपत, श्री हरिसिंह सैनी-हिसार, आचार्य विजयपाल-झज्जर, श्री सज्जनसिंह कोठारी-लोकायुक्त जयपुर, श्री विजयसिंह भाटी-जोधपुर, श्री इन्द्रजित् देव-यमुनानगर, आचार्य विद्यादेव, डॉ. सोमदेव 'शतांशु'-गुरुकुल काँगड़ी, डॉ. राजेन्द्र विद्यालंकार-कुरुक्षेत्र, पं. रामनिवास गुणग्राहक-श्रीगंगानगर, डॉ. विनय विद्यालंकार-प्रधान आ.प्र.स. उत्तराखण्ड, डॉ. कृष्णपाल सिंह-जयपुर, डॉ. मुमुक्षु आर्य-नोएडा, डॉ. प्रशस्यमित्र शास्त्री- रायबरेली, डॉ. रघुवीर वेदालंकार-दिल्ली, स्वामी ऋतस्पति-होशंगाबाद, डॉ. वेदपाल-मेरठ, आचार्या सूर्या देवी-शिवगंज, आचार्या धारणा 'याज्ञिकी', आचार्या प्रियम्वदा 'वेदभारती'-आर्ष कन्या गुरुकुल नजीबाबाद, श्री तपेन्द्र वेदालंकार-(रि. आई.ए.एस.) जयपुर, आचार्य विरजानन्द दैवकरणि-झज्जर, श्री कन्हैयालाल आर्य-गुरुग्राम, डॉ. वेदप्रकाश 'विद्यार्थी'-दिल्ली, आचार्य ओम्प्रकाश-आबूपर्वत, मा. रामपाल आर्य-प्रधान आ.प्र.स. हरियाणा, श्री उमेद शर्मा-मन्त्री आ.प्र.स. हरियाणा, डॉ. महावीर मीमांसक-दिल्ली, श्री विजय शर्मा- भीलवाड़ा, श्री दीनदयाल गुप्त-कोलकाता, श्री शत्रुघ्न आर्य-राँची, श्री सत्यानन्द आर्य-दिल्ली, डॉ. जगदेव-रोहतक, डॉ. रमेशचन्द्र 'जीवन'- चण्डीगढ़, पं. देवनारायण तिवारी-कोलकाता, पं. सत्यपाल पथिक, पं. भूपेन्द्र सिंह आदि।

इस समारोह हेतु आपका आर्थिक सहयोग आयकर की धारा '८०-जी' के अन्तर्गत दिए गये प्रावधान के अनुरूप कर मुक्त होगा। विदेश में निवास कर रहे धर्मप्रेमी सज्जन स्वदेश में होने वाले इस समारोह हेतु मुक्त हस्त से दान देकर देश का गौरव बढ़ाएँ। सभा को भारतीय शासन द्वारा विदेशों से दानस्वरूप दी गई राशि को प्राप्त करने की छूट प्राप्त है। आपका सहयोग ही हमारा सम्बल है। शुभकामनाओं सहित।

गजानन्द आर्य	डॉ. सुरेन्द्र कुमार	ओम् मुनि
संरक्षक	कार्यकारी प्रधान	मन्त्री

कुछ तड़प-कुछ झड़प

प्रा. राजेन्द्र 'जिज्ञासु'

वैदिक धर्म सर सैयद के शब्दों में- आर्यसमाज के आरम्भिक काल के पचास वर्षों में आर्यसमाज के साहित्यकारों, शास्त्रार्थ महारथियों तथा उत्तम वक्ताओं ने वेद के मूलभूत सिद्धान्तों की श्रेष्ठता व विशेषताओं को सब मत-पंथों के विचारशील सज्जनों के हृदयों पर अंकित करने में आश्चर्यजनक परिश्रम व तप करके अद्‌भुत सफलता प्राप्त की। अन्य मतों की मान्यताओं से वैदिक सिद्धान्तों की तुलना करके सब मत-पंथों को वेद की चौखट पर लाकर आर्यों ने खड़ा कर दिया। **'धर्म का आदि स्त्रोत'** जैसे ग्रन्थों का आर्यसमाज के बाहर विशेष प्रभाव पड़ा। प्रकाश कविरत्न जी का एक लोकप्रिय गीत कभी झूम-झूमकर गाया जाता था-

''वेदों का डंका आलम (सृष्टि) में बजवा दिया
ऋषि दयानन्द ने''

पाठकवृन्द! सर सैयद अहमद के शब्दों को पढ़िये-

''यद्यपि इस वस्तु (रूह-जीवात्मा) का मनुष्य के शरीर से भी कुछ सम्बन्ध है, परन्तु जब अधिक ध्यान देकर विचार किया जावे तब उस सम्बन्ध के होने पर यह शरीर से सर्वथा बे-सम्बन्ध है। मनुष्य कभी-कभी ऐसा ध्यानमग्न होता है कि सब कुछ भूल जाता है, फिर भी अपने आपको नहीं भूलता।

इस विचार के अनुसार यह भी सम्भव है कि मनुष्य का यह दिखाई देने वाला शरीर तो नष्ट हो जाय, परन्तु जो वस्तु इसके अन्दर है, वह वैसी की वैसी ही बनी रहे। फिर यदि यह वस्तु थोड़े ही दिन रहने वाली है और अन्त में एक सर्वोपरि अनादि और अनन्त परमेश्वर ने यह सम्पूर्ण चित्र-विचित्र अद्‌भुत जगत् एक ऐसी सत्ता के लिए बनाया हो जो कि नाशवान् और अचिरस्थायी या लुप्त होने वाली वस्तु है। अत: कुछ सन्देह नहीं है कि वह सत्ता भी सदा रहने वाली अनश्वर है।'' (**तसनीफ़े अहमदिया हिस्सा अव्वल पृष्ठ १५७)**

भारत के सब नवीन मत-पंथ जैन, कबीरपंथी, सिख, राधास्वामी, शैव और वैष्णव जीवात्मा को अनादि व नित्य अनश्वर मानते हैं, परन्तु इस्लाम व ईसाई मत जीव को उत्पन्न हुआ व नाशवान् ही मानते हैं। कोई भी साधु, सन्त, गुरु, महात्मा इन मत पंथों से वेद शास्त्र की यह सच्चाई नहीं मनवा सका। हमने मुसलमानों के सर्वमान्य नेता व विचारक के ये शब्द उद्धृत करके दिखा दिया है कि महर्षि दयानन्द और पण्डित लेखराम जी ने इस्लाम की सोच बदल दी है। हिन्दू-हिन्दू की रट लगाने से हिन्दू का गौरव व प्रभाव क्या बढ़ा? पं. लेखराम की परम्परा के अनेक विद्वान् पैदा होंगे तो संसार में हमारी दिग्विजय होगी।

अब किसे दोष दें- उस आर्य मुसाफिर परम्परा से कटकर आर्यसमाज ने भवन व संस्थायें तो बहुत बना लीं, परन्तु वह तेज व हुंकार कहाँ है? राधास्वामियों ने यह निराधार प्रचार किया कि ऋषि दयानन्द ने उनके संस्थापक से दीक्षा ली थी, तभी तो उनके मत का खण्डन नहीं किया। किसी भी लेखक ने इसका अकाट्य उत्तर देकर उनकी बोलती बन्द न की।

सम्पूर्ण जीवन चरित्र में जालन्धर शास्त्रार्थ का प्रमाण देकर हमने उन्हें झुठला दिया कि महर्षि ने बाबा शिवदयाल का नाम लेकर इस मत का खण्डन किया। यह भी सप्रमाण लिखा कि इनके तीसरे गुरु ने ऋषि जी की जीवनी लिखी है। उसमें राधा- स्वामियों की इस मनगढ़न्त कहानी का कतई उल्लेख नहीं जबकि यह गुरुजी ऋषि के समकालीन थे। बहुत प्रशंसक भी हैं और विरोध भी किया है।

इनके एक गुरुसर आनन्दस्वरूप ने सत्यार्थप्रकाश के खण्डन में लिखी अपनी पोथी में इस गप्प का उल्लेख नहीं किया। अब यदा-कदा आर्यसमाजी इस मनगढ़न्त कहानी का उत्तर देने को कहते हैं। हमने सप्रमाण इसका प्रतिवाद ऋषि जीवन में कर दिया। आर्यसमाज ने अपना दृष्टिकोण मुखरित न करने की ठानी हो तो क्या घर-घर जाकर उत्तर देवें?

श्री धर्मवीर जी के साथ हम जालन्धर गये तो आर्यसमाज मॉडल टाउन के प्रधान जी ने ज्ञानी दित्तसिंह के ऋषि निन्दा में छपवाये गये सिख भाइयों के ट्रैक्ट का

उत्तर देने को कहा। यह ट्रैक्ट पंजाब प्रतिनिधि सभा के कार्यालय के पास से छपवाया गया। पथिक जी ने यह उत्तर के लिये धर्मवीर जी को कभी भेजा था।

उन्हें बताया गया कि परोपकारी में भी उत्तर दे दिया गया था और सम्पूर्ण जीवन-चरित्र में भी इसका प्रतिवाद किया गया है। दित्तसिंह स्वयं को वेदान्त का प्रचारक घोषित करता है। वह स्वयं को सिख लिखता ही नहीं। सब बातों का हम उत्तर दे चुके हैं। स्वयं उत्तर देना जानते नहीं, पठनीय साहित्य से इनका कुछ लेना-देना नहीं है।

स्वामी विवेकानन्द पर ऋषि की छाप- स्वामी विवेकानन्द वेदान्ती थे। काली के पूजक रहे। मूर्ति-पूजा से कुछ ऊबे भी। ईसा के भी भक्त, प्रशंसक रहे। उनकी मान्यतायें क्या थीं? उनके एक जीवनी-लेखक ने लिखा है कि उन्हें परस्पर विरोधी कथन की चिन्ता नहीं थी। उनकी ईसा पर लिखी पुस्तिका को तथा हिन्दू मत पर लिखे साहित्य को सामने रखकर कोई पढ़ेगा तो किस निष्कर्ष पर पहुँचेगा?

हर्ष का विषय है कि अनुभव ने स्वामी विवेकानन्द जी को भी वेद के द्वार पर लाकर खड़ा कर दिया, परन्तु उनकी मूर्तियाँ खड़ी करने वाले भक्त उनके अन्तिम समय के वैदिक विचारों को न तो मान्यता देंगे और न ही कुछ महत्त्व देंगे। यह भी बताना यहाँ आवश्यक रहेगा कि रामकृष्ण मिशन द्वारा प्रकाशित उनकी एक जीवनी में उनके द्वारा मूर्तिपूजा के विरोध की भी एक बहुत शिक्षाप्रद घटना मिलती है। आपने ३१ मार्च १९०८ में ढाका (बंगाल) में एक व्याख्यान दिया था। उनका यह भाषण 'प्रबुद्ध भारत' के अक्टूबर १९०८ में प्रकाशित हुआ था। अपने जीवन के अन्तिम दिनों के इस व्याख्यान में आपने ऋषि दयानन्द के स्वर में स्वर मिलाते हुए कहा था-

१. केवल वेद ही हमारे लिये स्वत: प्रमाण हैं। प्रत्येक मनुष्य को वेद के अध्ययन का अधिकार है। ऐसी यजुर्वेद की घोषणा है।

२. फिर उसी व्याख्यान में यह कहा, ''क्या आप हमारे वेदों से कोई भी प्रमाण दिखा सकते हैं कि प्रत्येक मनुष्य को वेद के अध्ययन का अधिकार नहीं है?

३. इसमें सन्देह नहीं कि पुराण हमको कहते हैं कि विशेष-विशेष जातियों को वेद की विशेष-विशेष शाखाओं के पठन का अधिकार नहीं अथवा यह कि वेदों का अमुक भाग सतयुग के लिए है तथा अमुक कलयुग के लिए है।

४. परन्तु आप ध्यान रखें कि वेदों का ऐसा आशय कतई नहीं है। ये केवल तुम्हारे पुराण हैं जो ऐसा कहते हैं। परन्तु क्या सेवक स्वामी को आज्ञा दे सकता है? स्मृति, पुराण तथा तन्त्र ये सभी वेदानुकूल होने से ही मानने योग्य हैं और जहाँ कहीं ये वेद-विरुद्ध हैं, वे अविश्वसनीय होने से त्यागने योग्य हैं, परन्तु आजकल हमने पुराणों को वेदों से भी बढ़कर स्थान दे रखा है। वेदों का पठन-पाठन बंगाल से सर्वथा लुप्त हो चुका है। पुराणों में हम बहुत सी ऐसी बातें पाते हैं जो वेदानुकूल नहीं, यथा इनमें कहा है कि अमुक व्यक्ति की आयु दस सहस्र वर्ष थी, परन्तु वेद में हम मनुष्य की आयु सौ वर्ष की होना पाते हैं।''

पाठकवृन्द! क्या स्वामी विवेकानन्द जी का यह कथन वही नहीं जो महर्षि दयानन्द जी का है?

हिन्दू फिर भी इससे कुछ नहीं सीखेगा। हम इस अवतरण पर कभी फिर विस्तृत प्रतिक्रिया देंगे। आज तो यही कहना चाहेंगे-

ऋषिराज तेज तेरा चहुँ ओर छा रहा है।
तेरे बताये पथ पर संसार आ रहा है।।

पतन की पराकाष्ठा- श्री डॉ. अशोक आर्य जी तथा यह सेवक तो कोई ४५-४७ वर्ष पूर्व ही आर्यसमाज अबोहर छोड़कर निकट के आर्यसमाज गिदड़बाहा के सदस्य बन गये। पंजाब सभा सेठ हरबंसलाल जी के परिवार के हाथ आ गई। स्कूलों कॉलेजों में सभा वालों की रुचि है। धर्म-प्रचार से किसी को कुछ लेना-देना नहीं। सेवक श्रीगंगानगर समाज के कार्यक्रम से लौट रहा था तो आर्यसमाज मन्दिर पर दृष्टि पड़ गई। विचित्र-विचित्र चित्र देखकर ऐसा लगा कि नाच-गाने, तमाशे वालों ने समाज कब्जा लिया है। साथ ही एक स्थूलाक्षरों में विज्ञापन देखा कि आर्यसमाज के मन्दिर का सत्संग भवन (हॉल कहा गया है) किराये के लिये लेने वाले...

आर्यधर्म के अपमान की पराकाष्ठा हो गई। यह पंजाब सभा के लिये डूब मरने की बात है। बड़े-बड़े सम्मेलन,

महासम्मेलन करने वाले सब धड़ों के सब तथाकथित नेताओं की नींद ये पंक्तियाँ पढ़कर नहीं खुलेंगी, ऐसा मैं समझता हूँ। पंजाब में जो कभी कुमार अवस्था, जवानी में आर्यसमाज के पास नहीं फटका था वह व्यक्ति आर्यसमाज की करोड़ों रुपये की सम्पत्ति पर अपने परिवार का एकछत्र अधिकार किये बैठा है। ये आर्य मन्दिर नहीं रहे, आर्यसमाज के कब्रिस्तान बन गये हैं। दु:खी मन की वेदना है, व्यक्त कर दी।

यह प्रवृत्ति घातक है- मैं बाल्यकाल में ही आर्य पत्रों व साहित्य का रसिक बन गया। पं. लेखराम जी, आचार्य रामदेव जी आदि के लेखों व साहित्य में हर महत्त्वपूर्ण प्रमाण का अता-पता पढ़कर मैं झूम उठता था। अब अपने को रिसर्चस्कॉलर के रूप में स्थापित करने पर तुले व्यक्ति इधर-उधर से तस्करी करके उसमें कुछ मिलावट-हटावट करके, जानकारी के स्रोत का पता न देकर अपनी विद्वत्ता की धौंस जमाते हैं। कितने उदाहरण दिये जायें?

आर्यसमाज के सात खण्डी इतिहास के पोथों में मेरे जन्मस्थान में शुद्धि आन्दोलन, आर्यों के बहिष्कार का वृत्तान्त देखकर बड़ा दु:ख हुआ। सब कुछ श्री पं. चमूपति जी के ग्रन्थ तथा मेरे एक लेख के आधार पर इस आन्दोलन का इतिहास लिखा है। मेरे लेख में मेरे जन्मस्थान के समीप के 'पड़ोपी' नाम के ग्राम को लेखन की चूक समझ कर आदरणीय क्षितीश जी ने इसे 'पड़ोसी' ग्राम, नाम बनाकर सार्थक सा बना दिया। बस फिर क्या था, इस गौरवपूर्ण इतिहास पर लिखने वाले हर स्कॉलर ने 'पड़ोसी'-'पड़ोसी' की धूम मचा दी। सात खण्डी स्कॉलरों ने जानकारी का स्रोत क्या बताना था? मेरा लेख लन्दन टाइम्स के किसी गोरे के नाम से छपता तो उसका नाम ये चाट जाते।

आर्यगज़ट उर्दू में लन्दन आर्यसमाज के आरम्भिक इतिहास पर मेरे एक खोजपूर्ण, प्रेरक लेख को अनूदित करवाकर लाला रामगोपाल जी ने प्रकाशित करवाया। उसे प्रिं. लक्ष्मीदत्त दीक्षित जी ने पढ़ा। उसमें दादा भाई नौरोजी के आर्यसमाज के सत्संग में भाग लेने की चर्चा पढ़कर श्रीमान् दीक्षित जी ने मुझे पत्र लिखकर इसका प्रमाण माँगा। मैंने उनको तत्काल उत्तर देते हुये लिखा, यहाँ आकर तत्कालीन पत्रों में यह समाचार पढ़ लें। हम इतिहास गढ़ने वाले नहीं हैं। उनका पत्र मेरे पास अब भी सुरक्षित है।

आपने '**विषवृक्ष**' पुस्तक में मेरे उस लेख की सामग्री जितनी दे सकते थे, दे दी। कमाल यह हुआ कि उस '**विषवृक्ष**' पुस्तक का विमोचन भी इसी सेवक से करवाया गया। विमोचन के पश्चात् पुस्तक पढ़कर पता चला कि जिस लेख की प्रामाणिकता की खोज करते-करते मुझे स्वामी विद्यानन्द महाराज ने पत्र लिखा था, उसकी सामग्री उन्होंने कहाँ से उठाई है, यह उल्लेख नहीं है। स्रोत बता देते तो मैं 'उठाई' शब्द का प्रयोग न करता फिर तो आदरसहित 'उद्धृत किया' शब्द लिखता।

इसे क्या कहेंगे?- इन दिनों मैं आदरणीय बन्धु श्री उमेश राठी जी की सत्प्रेरणा से उनके स्नेह का बँधा पूजनीय मास्टर आत्माराम जी का जीवन-चरित्र लिख रहा हूँ। कार्यों का बोझा बहुत है। कुल्लियात के पश्चात् '**लौह पुरुष स्वतन्त्रानन्द स्वामी**' का नया संस्करण छपने वाला है। मास्टर आत्माराम एक अथक कर्मवीर विद्वान् थे। आर्यसमाज के गौरव और मास्टर जी के व्यक्तित्व के अनुरूप कम से कम इस सेवक को **सद्धर्म प्रचारक** तथा **आर्य मुसाफ़िर** की फाइलों व प्रकाश के आर-पार जाना पड़ेगा। प्रभु मुझे ऐसा करने का सामर्थ्य दें।

माहेश्वरी भाइयों ने कुछ सामग्री मेरे अवलोकनार्थ भेजी है। उसमें पहला लेख दिल्ली के श्रीमान् विवेक आर्य का पढ़कर घोर धक्का लगा। बहुत निराशा हुई। विषय के ज्ञान के बिना निब घिसना अशोभनीय है। आपने न जाने किस प्रयोजन से यह मनगढ़न्त कहानी परोस दी कि मास्टर आत्माराम पक्की सरकारी नौकरी छोड़कर बड़ौदा चले गये। यह न तो मास्टर जी ने कहीं लिखा है, न ही किसी पुराने पत्र में, पुराने साथी-संगी ने हमें अमृतसर में ऐसा बताया।

मास्टर जी बी.ए. नहीं थे। यह भी कल्पित कथन है। गुजरात प्रदेश पूरा उनका कार्यक्षेत्र नहीं रहा था। पं. गुरुदत्त जी के सम्पर्क में आप बाद में आये। पहले मास्टर मुरलीधर जी की प्रेरणा से पं. लेखराम जी को सुनकर आर्यसमाज से

जुड़ गये। पं. गुरुदत्त जी की प्रेरणा से जातिसूचक माहेश्वरी शब्द का प्रयोग तज दिया। यह मास्टर जी के लेख में छपा है और उनकी पुत्री ने भी पत्र लिखकर हमें यह जानकारी दी थी।

कुछ इधर की कुछ उधर की- स्वामी श्रद्धानन्द जी की संन्यास दीक्षा शताब्दी, पं. चमूपति जी की गृह-निष्कासन शताब्दी तथा धौलपुर आर्य सत्याग्रह शताब्दी किस-किस सभा संस्था व नेता ने मनाई? श्री अभय आर्य जी को राजपुरा, तलवन, मोही, लताला आदि प्रचार यात्रा करना सुझाया। आपने पानीपत में एक बड़ा सम्मेलन करके दिखा दिया। कभी वेश द्वय बिना बुलाये पंजाब प्रतिनिधि सभा द्वारा आयोजित स्वामी श्रद्धानन्द बलिदान अर्ध-शताब्दी समारोह में विघ्न डालने तलवन पहुँच गये। अग्निवेश न जाने अभय की यात्रा में तलवन दर्शन देना कैसे भूल गये? वह स्वयं सभा न करके भाजपा की सभा में घुसकर अटलजी को श्रद्धाञ्जलि देने जा पहुँचे। खबर तो बन गई। फोटो छप गई। खुद सभा क्यों न की?

श्री लक्ष्मण जी ने भरतपुर में धौलपुर शताब्दी पर कितना व्यय किया? यह किसी ने नहीं पूछा? भरतपुर में जिसने दस सहस्त्र रुपये देने का आश्वासन दिया था, वह फिर दिखे ही नहीं। लक्ष्मण जी अकेले पर सारा भार डालना तो उचित नहीं था। सब मित्रों को अपना कर्त्तव्य पालन करना होगा। अखण्ड संग्राम पुस्तक के लिये भी आप ही ने कुछ सहयोग किया और किसी समाज या व्यक्ति को यह भी न सूझा कि उन्हें भी कुछ करना चाहिये।

आवश्यक नहीं कि कानून जो कहे वह धर्मानुसार भी हो। देश ने उच्चतम न्यायालय का निर्णय सुन लिया। अब समलैङ्गिक विवाहों के फैलने से अमर्यादा व अनैतिकता का चलन बढ़ेगा। स्वामी जी स्वतन्त्रानन्द जी कहा करते थे कि आवश्यक नहीं कि जो कानून कहे वह सत्य भी हो और पाप कर्म न हो और यह भी सत्य है कि जिसे धर्मात्मा, ज्ञानी महात्मा पाप मानें, कानून भी उसे पाप माने।

सुरापान, मांसाहार, सिगरेट पीना धर्मानुसार पाप है। पर-स्त्री से सम्बन्ध बनाना दुष्कर्म है, परन्तु सहमति से ऐसा सम्बन्ध बनाना कानून की दृष्टि में अपराध नहीं। धर्मानुसार बुढ़ापे में विवाह रचाना अशोभनीय है। कानून इसे वर्जित नहीं मानता। इस युग में बहिश्त की हूरों की, गिलमान की समीक्षा करते हुये ऋषि दयानन्द ने समलैङ्गिकता की निन्दा की है, परन्तु देश में सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय आने पर सब नेता, सब धर्माचार्य, सब योगी महात्मा, काषाय वस्त्रधारी मौन हैं। इस चुप्पी का क्या अर्थ लिया जावे? अग्निवेश जी और उनके वेशपंथी सम्भवत: सब न्यायालय के निर्णय पर गदगद होंगे। अग्निवेश जी इसे अपनी अपूर्व दिग्विजय मान सकते हैं। इसमें सन्देह ही क्या?

बाड़ी समाज को बधाई हो- धौलपुर के निकट बाड़ी नाम के एक छोटे से स्थान के आर्यसमाज ने सोत्साह धौलपुर आर्य सत्याग्रह शताब्दी मनाकर समाज का सिर ऊँचा कर दिया। यह सेवक उस दृश्य को देखने से वञ्चित रहा। बाहर से, दूर-दूर से पधारे आर्य उस समारोह से बहुत प्रेरणा लेकर लौटे। श्रीगंगानगर समाज वालों के मुख से हमने बाड़ी के आर्यों की, विशेष- रूप से वहाँ की कर्मठ आर्य देवियों के अदम्य उत्साह, सेवा भाव व धर्मधुन की बहुत प्रशंसा सुनी।

वह नगर धन्य है, वह क्षेत्र बड़ा भाग्यशाली है जहाँ ऐसी पुरुषार्थ परमार्थ का साक्षात् रूप आर्य ललनायें प्रभु की वेद-वाणी का सन्देश सुनाने में सक्रिय हैं।

जब तक सबकी रक्षा करने वाला धार्मिक राजा वा आप्त विद्वान् न हो तब तक विद्या और मोक्ष के साधनों को निर्विघ्नता से पाने के योग्य कोई भी मनुष्य नहीं होता है और न मोक्ष सुख से अधिक कोई सुख है।

-महर्षि दयानन्द, यजुर्वेद, भावार्थ ८.५२

जो विद्या की वृद्धि के लिए पठन-पाठन रूप यज्ञ कर्म्म करने वाला मनुष्य है वह अपने यज्ञ के अनुष्ठान से सब की पुष्टि तथा संतोष करने वाला होता है इससे ऐसा प्रयत्न सब मनुष्यों को करना उचित है।

-महर्षि दयानन्द, यजुर्वेद, भावार्थ ७.२७

ओ३म्

परोपकारिणी सभा

दयानन्द आश्रम, केसरगंज, अजमेर (राज.) पिन. ३०५००१ दूरभाष– ०१४५–२४६०१६४

वेदगोष्ठी–२०१८

मान्यवर सादर नमस्ते।

आशा करता हूँ कि आप स्वस्थ सानन्द होंगे। आपको सुविदित है कि सद्भावी विद्वानों के सहयोग से सदा की भांति इस वर्ष भी अन्तर्राष्ट्रीय दयानन्द वेदपीठ, दिल्ली तथा अनुसंधान विभाग परोपकारिणी सभा, अजमेर के संयुक्त तत्त्वावधान में ऋषि मेले के अवसर पर वेदगोष्ठी का आयोजन किया जा रहा है। इस गोष्ठी में देश के अनेक भागों से पधारे प्रख्यात वैदिक विद्वान् निर्धारित विषयों पर अपने शोधपूर्ण विचार प्रस्तुत करते हैं। इनमें से चुने हुए शोध–पत्र परोपकारी व वेदपीठ की शोध–पत्रिका के माध्यम से प्रकाशित किये जाते हैं। जिससे जो लोग गोष्ठी में नहीं आ सकते वे भी लाभान्वित होते हैं। विद्वानों को भी इस विषय पर अधिक विचार करने का अवसर मिलता है। गत ३० वर्षों से गोष्ठी का आयोजन निरन्तर किया जा रहा है। अब तक निम्नलिखित बिन्दुओं पर विचार किया जा चुका है:–

१. ऋषि दयानन्द की वेदभाष्य शैली।	**१२ नवम्बर, १९८८**
२. वेद और कर्मकाण्डीय विनियोग।	**०५ नवम्बर, १९८९**
३. अथर्ववेद समस्या और समाधान।	**२७ नवम्बर, १९९०**
४. वेद और विदेशी विद्वान्।	**१६ नवम्बर, १९९१**
५. वैदिक आख्यानों का वास्तविक स्वरूप।	**०१ नवम्बर, १९९२**
६. वेदों के दार्शनिक विचार।	**२८ नवम्बर, १९९३**
७. सोम का वैदिक स्वरूप।	**१२ नवम्बर, १९९४**
८. पर्यावरण समस्या का वैदिक समाधान।	**०३ नवम्बर, १९९५**
९. वैदिक समाज व्यवस्था।	**०१ नवम्बर, १९९६**
१०. वेद और राष्ट्र।	**२४ अक्टूबर, १९९७**
११. वेद और विज्ञान।	**०९ अक्टूबर, १९९८**
१२. वेद और ज्योतिष।	**१० नवम्बर, १९९९**
१३. वेद और पदार्थ विज्ञान	**०३ नवम्बर, २०००**
१४. वेद और निरुक्त	**१८ नवम्बर २००१**
१५. वेद में इतिहास नहीं	**०१ नवम्बर २००२**
१६. वेद में कृषि व वनस्पति विज्ञान	**३१ अक्टूबर २००३**
१७. वेद में शिल्प	**१९ नवम्बर २००४**
१८. वेदों में अध्यात्म	**११ नवम्बर, २००५**
१९. वेदों में राजनीतिक चिन्तन	**२७ नवम्बर, २००६**
२०. वेद सब सत्य विद्याओं की पुस्तक है	**१६ नवम्बर, २००७**
२१. वैदिक समाज विज्ञान	**०५ नवम्बर, २००८**
२२. सत्यार्थप्रकाश का ७ वाँ समुल्लास व वेद	**२३ अक्टूबर, २००९**
२३. सत्यार्थप्रकाश का ८ वाँ समुल्लास व वेद	**१२ नवम्बर, २०१०**
२४. सत्यार्थप्रकाश का ९ वाँ समुल्लास व वेद	**०४ नवम्बर, २०११**
२५. महर्षिदयानन्दाभिमत मन्तव्य: वैदिक परिप्रेक्ष्य	**१६ नवम्बर, २०१२**
२६. वेद और सत्यार्थप्रकाश का १२वाँ समुल्लास	**८ नवम्बर, २०१३**
२७. भारतीय मत सम्प्रदाय और वेद	**३१ अक्टू. १,२ नव., २०१४**
२८. भारतीय मत सम्प्रदाय और वेद	**२०,२१,२२ नव., २०१५**
२९. दयानन्द दर्शन की वेदमूलकता	**४,५,६ नव., २०१६**
३०. वेदों में शिक्षा के सिद्धान्त	**२७,२८,२९ अक्टू., २०१७**

।। ओ३म् ।।

वेद गोष्ठी २०१८ के लिए निर्धारित विषय

षड्दर्शनों की वेदमूलकता और महर्षि दयानन्द

उपशीर्षक :

०१. वेदों में दर्शन तत्त्व की विवेचना
०२. वेदों में षड्दर्शनों के मूलतत्त्व की मीमांसा
०३. महर्षि दयानन्द के चिन्तन में षड्दर्शनों की वेदमूलकता
०४. षड्दर्शनों में ईश्वर-विचार और उनकी वेदमूलकता
०५. षड्दर्शनों में प्रमाण-विचार और महर्षि दयानन्द
०६. षड्दर्शनों में जगत् का सम्प्रत्यय और उसकी वेदमूलकता
०७. षड्दर्शनों में जीव सिद्धान्त या जीवात्मा का सिद्धान्त और महर्षि दयानन्द
०८. षड्दर्शनों की वेदमूलकता और मुक्ति विचार के सन्दर्भ में महर्षि दयानन्द
०९. षड्दर्शनों की वेदमूलकता प्रत्यक्ष प्रमाण के सन्दर्भ में- एक विवेचना
१०. षड्दर्शनों में अनुमान प्रमाण की वेदमूलकता का समीक्षात्मक विशेषण
११. षड्दर्शनों में बन्धन का सिद्धान्त और वेदमूलकता
१२. वेदों के सन्दर्भ में षड्दर्शनों की प्रमुख मान्यताएँ और महर्षि दयानन्द
१३. षड्दर्शनों में मोक्ष प्राप्ति के साधन और महर्षि दयानन्द
१४. षड्दर्शनों में सत् के स्वरूप की वेदमूलकता और महर्षि दयानन्द
१५. षड्दर्शनों में कर्म सिद्धान्त और महर्षि दयानन्द
१६. षड्दर्शनों में पदार्थ विवेचन और महर्षि दयानन्द
१७. षड्दर्शनों में ब्रह्म एवं जीव सम्बन्धों की विवेचना की वेदमूलकता और महर्षि दयानन्द
१८. षड्दर्शनों के समन्वय की वेदमूलकता और महर्षि दयानन्द
१९. षड्दर्शनों में वेद विचार और महर्षि दयानन्द
२०. षड्दर्शनों में त्रैतवाद की वेदमूलकता और महर्षि दयानन्द
२१. महर्षि दयानन्द के अनुसार षड्दर्शनों का समन्वय
२२. वैशेषिक दर्शन की वेदमूलकता
२३. न्याय दर्शन की वेदमूलकता
२४. सांख्य दर्शन की वेदमूलकता
२५. योग दर्शन की वेदमूलकता
२६. मीमांसा दर्शन की वेदमूलकता
२७. वेदान्त दर्शन की वेदमूलकता
२८. वेदान्त दर्शन में वर्णित ब्रह्म के स्वरूप की वेदमन्त्रों से पुष्टि।

सहायक सन्दर्भ ग्रन्थ

०१. षड्दर्शन समन्वय- श्री प्रशान्त आचार्य
०२. आचार्य उदयवीर शास्त्री का षड्दर्शन भाष्य एवं विवेचना ग्रन्थ
०३. योग दर्शन भाष्य-पं. राजवीर शास्त्री
०४. स्वामी ब्रह्ममुनि के दर्शन भाष्य
०५. स्वामी दर्शनानन्द जी के दर्शन भाष्य
०६. भारतीय दर्शन (दो भाग)- डॉ. राधाकृष्णन्
०७. महर्षि दयानन्द सरस्वती के समस्त ग्रन्थ
०८. दर्शन तत्त्व विवेक- आचार्य वैद्यनाथ शास्त्री
०९. षड्दर्शन समन्वय-पं. विद्यानन्द शर्मा
१०. भारतीय दर्शन का सर्वेक्षण- एम. हिरियन्ना
११. भारतीय दर्शन-एस.एन. दासगुप्त
१२. भारतीय दर्शन-दन्त एवं चटर्जी
१३. भारतीय दर्शन- एन.के. देवराज
१४. भारतीय दर्शन-जी.डी. शर्मा
१५. भारतीय दर्शन-उमेश मिश्र
१६. भारतीय दर्शन-बलदेव उपाध्याय
१७. सिक्स सिस्टम ऑफ इण्डियन फिलॉस्फी- एफ. मैक्समूलर
१८. रिचर्ड गार्वे- सांख्य फिलॉस्फी

मन्त्री, परोपकारिणी सभा, अजमेर

ऐतिहासिक कलम से....

कड़वी सच्चाइयाँ

प्रो. रामदेवजी आचार्य

परोपकारी पत्रिका नियमित रूप से 'ऐतिहासिक कलम से' स्तम्भ के अन्तर्गत आर्यसमाज के स्मृतिशेष दिग्गज विद्वानों के लेख क्रमशः प्रकाशित करती आ रही है। उद्देश्य यही है कि जिन्हें आर्यसमाज भूल चुका है, उन्हें पुनः समाज के सामने लाया जाये, ताकि उनके ज्ञान-विद्या का भी लाभ उठाया जाये।

आचार्य रामदेव जी का लिखा यह लेख मात्र लेख ना होकर एक पीड़ा भी है। हम लेख पढ़ते हैं और थोड़ा मनोरंजन करके पत्रिकाएँ एक तरफ रख देते हैं, अगर यह लेख भी इसी प्रवृत्ति का शिकार हुआ तो आर्यसमाज की उन्नति असम्भव है। समय के साथ सुधारों का तरीका तो बदल सकता है, पर सुधार की जरूरत समाप्त नहीं हो सकती। - सम्पादक

१. साप्ताहिक सत्संग- आर्यसमाज के साप्ताहिक अधिवेशनों में वेद-भगवान् को प्रायः आगे नहीं ले जाया जाता, यद्यपि आर्यसमाज का नियम है कि वेद का पढ़ना-पढ़ाना, सुनना-सुनाना आर्यों का परम धर्म है। इसके विपरीत आजकल के आर्यों का परम धर्म अखबारों का पढ़ना अथवा हिन्दू-संगठन या काँग्रेस के प्रोग्राम की चर्चा करना मात्र रह गया है। ईसाइयों के गिरजे में जब कभी सत्संग होता है तो उसमें बाइबिल की किसी आयत को लेकर उसकी व्याख्या की जाती है। इस व्याख्या में ही देश और जाति अथवा पारिवारिक एवं वैयक्तिक जीवन की समस्याओं पर भी प्रकाश डाला जाता है। मेरी सम्मति में प्रत्येक आर्यसमाज में एक पुरोहित होना चाहिये, जो एक सप्ताह पूर्व उस मन्त्र अथवा सूक्त की सूचना कर दिया करे, जिसकी कथा या व्याख्या साप्ताहिक सत्संग में होनी हो (इस विषय में 'वैदिक-विनय' या 'वैदिक-सम्पत्ति' उपयोगी हैं)। इससे यह होगा कि सब सदस्य उस मन्त्र अथवा सूक्त को पढ़ कर आवेंगे और अपनी शङ्कायें तथा विचार पुरोहित के सम्मुख रख सकेंगे। इस प्रकार साप्ताहिक सत्सङ्ग बहुत मनोरंजक हो जायेंगे और उनकी प्रतिदिन घटती हुई उपस्थिति फिर ठिकाने आ जायेगी। सत्संगियों को लाभ के साथ चरित्र भी उन्नत होगा। आजकल के सत्संग तो केवल एक प्रकार का ढोंग मात्र ही रह गये हैं। यह आवश्यक नहीं कि पुरोहित केवल वही हो सके जिन्हें दक्षिणा मिलती है, प्रत्युत किसी भी स्वाध्यायशील आर्यपुरुष को पुरोहित नियत किया जा सकता है। यज्ञ-वेदी पर ब्राह्मण के स्थान पर पुरोहित ही बैठे, इससे वेदी का महत्त्व बढ़ेगा। आजकल आर्यसमाज की वेदी का न तो कोई गौरव ही है और न कोई मर्यादा ही। **उपासना मन्दिर में न तो किसी व्यक्ति को जूता पहन कर जाने की इजाज़त मिलनी चाहिये और न ही वहाँ कोई पाठशाला आदि लगनी चाहिये।** इसके अतिरिक्त समाज-मन्दिर में प्रतिदिन हवन एवं संकीर्तन होना चाहिये, बेशक, इसमें दो-तीन आदमी ही क्यों न सम्मिलित हों।

२. संगीत-शास्त्र का उद्धार -आर्यसमाज में संगीत की बुरी तरह से हत्या होती है। प्रार्थना के भजन थिएटर की तर्ज पर गाये जाते हैं और श्रोताओं में भी किसी प्रकार की गम्भीरता का भाव नहीं होता। भजनीकों के चरित्र पर भी ध्यान नहीं दिया जाता। यह भुला दिया जाता है कि भजनीक भी एक तरह का उपदेशक ही है। यह कहने की ज़रूरत नहीं कि यदि उपदेष्टा के जीवन में ही वह चीज़ न हो जिसका वह उपदेश कर रहा है तो उसका श्रोताओं पर कुछ असर नहीं हो सकता। दूसरी बात यह है कि हारमोनियम का बहिष्कार करके उसके स्थान पर सितार, सारंगी, तबला, दिलरुबा एवं वीणा आदि का प्रयोग करना चाहिये। साप्ताहिक सत्संग में खण्डन-मण्डन के भजन न होकर शुद्ध भक्ति-रस से परिपूर्ण भजन होने चाहियें। नये भजन बनाये जावें तो वे वेदमन्त्रों के आधार पर हों। स्वस्तिवाचन और शान्तिप्रकरण के मन्त्रों का सरल हिन्दी में पद्यानुवाद कर देना चाहिये। वे पद्यानुवाद ही पर्वों तथा संस्कारों के अवसरों पर सब स्त्री-पुरुषों को मिलकर गाने

चाहियें। गायन में सभी को सम्मिलित होना उचित है। जब गिरजे में संगीत होता है तो महाराज एडवर्ड भी दूसरे लोगों के साथ-साथ गाते हैं। भारत के गिरजों में भी वाइसराय सबके साथ मिल कर गाते हैं।

आर्यसमाज में गाना छोटे आदमियों का काम समझा जाता है। इसीलिये आर्यसमाज ने गायन-विद्या का यथोचित लाभ नहीं उठाया। आर्यसमाज में रवाबियों और मिरासियों की एक ऐसी जमात पैदा हो गई है जो अपने साथ आर्यसमाज को भी ले डूबेगी। अत: इस कृत्रिम जमात को हटाकर स्वयं सब नर-नारियों को प्रभु के गुण-गान में सम्मिलित होना चाहिये। सूरदास, कबीर, मीरा, नानक, रहीम, नामदेव, चैतन्य इत्यादि भक्तों के अमर गीतों में से भी वैदिक-सिद्धान्तों के अनुसार एक संग्रह तैयार होना चाहिये, जिसका उपयोग सत्संग के अवसर पर किया जावे।

३. शास्त्रार्थ और वाद-विवाद- शास्त्रार्थ आजकल गाली-अर्थ एवं शस्त्र-अर्थ बन रहे हैं तथा डण्डे और गाली से सत्य का अपमान किया जाता है। ऋषि दयानन्द ने अपने जीवन के अन्तिम दिनों में घोषणा की थी कि शास्त्रार्थ लिखित होने चाहियें। विषय एक मास पूर्व निश्चित कर दिया जाय और उभयपक्षी तैयार होकर आवें। विधर्मियों के आग्रह करने पर अथवा झूठी लोक-लज्जा के भय के कारण कभी भी आर्यसमाज को ऋषि-प्रदर्शित मार्ग से च्युत नहीं होना चाहिये। सार्वदेशिक सभा तथा प्रान्तीय प्रतिनिधि सभाओं को इस विषय की आज्ञायें भेजकर उनका पालन कराना चाहिये। जो उपदेशक तू-तू, मैं-मैं में भाग लें अथवा सदसद् के निर्णय में इस नियम का पालन न करें, उन्हें समाज से बहिष्कृत कर देना चाहिये।

४. पर्व और उत्सव यज्ञरूप हों- पर्वों और उत्सवों के लिये यज्ञीय पद्धतियों का निर्माण हो और इनके लिये उपयुक्त वेदमन्त्रों का संग्रह किया जावे। इन मन्त्रों का हिन्दी में सरस तथा सरल पद्यानुवाद हो जिसे यज्ञ की समाप्ति पर सब मिलकर गावें। इन पर्वों में ऋषि-बोधोत्सव, गुरुदत्त-दिवस, श्रद्धानन्द-बलिदानोत्सव, लेखराम-बलिदानोत्सव आदि उत्सव भी शामिल होने चाहियें। हमारा उद्देश्य यह होना चाहिये कि वेदों के अक्षरों एवं वेदों के मन्तव्यों का प्रचार हो, यदि कोई आदमी दुर्भाग्य से वेद के मूल शब्दों को नहीं समझ सकता हो तो उसके लिये प्रचलित भाषा द्वारा वैदिक-सिद्धान्तों के समझने का अवसर उपस्थित होना चाहिये तथा उसके मुख से उच्चारित भी होने चाहियें।

५. संस्थाओं का एकीकरण- आर्यसमाज की संस्थाओं को केन्द्रित करना चाहिए, विशेषकर गुरुकुलों को। मेरी सम्मति में गुरुकुल-विश्वविद्यालय तो एक ही होना चाहिये और अधिकारी परीक्षा तथा ८ वीं कक्षा तक के बहुत से गुरुकुल उस से संयुक्त होने चाहियें। विश्वविद्यालय के शिक्षापटल में सब प्रान्तीय प्रतिनिधि सभाओं के प्रतिनिधि होने चाहियें। सब गुरुकुलों की स्कीम तथा परीक्षा भी एक ही होनी चाहिये। गुरुकुल कांगड़ी में जितने प्रोफ़ेसर हैं वे ५०० विद्यार्थियों को पढ़ा सकते हैं, अत: विश्वविद्यालय तब तक नया नहीं खुलना चाहिये जब तक १००० विद्यार्थी महाविद्यालय विभाग में न होवें।

आर्यसमाज के कॉलिजों में संस्कृत की एक प्रवेशिका परीक्षा पास करनी अनिवार्य हो। जो विद्यार्थी इसके लिये तैयार न हो उन्हें कॉलेज से निकाल देना चाहिये। पंजाब, यू.पी. के स्कूलों में हिन्दी ही शिक्षा का माध्यम होना चाहिये। **जिन स्कूलों में हिन्दी से इतर कोई भाषा माध्यम हो तो उन्हें बन्द कर देना चाहिये। पंजाब और यू.पी. के बाहर भी जहाँ, जिस प्रान्त में आर्य स्कूल हो वहाँ भी हिन्दी का पढ़ना अनिवार्य कर देना चाहिये और संस्कृत की प्रारम्भिक शिक्षा भी अनिवार्य कर देनी चाहिये।** स्वतन्त्र शिक्षणालयों को भी प्रान्तीय सभाओं का निरीक्षण स्वीकार कर लेना चाहिये, यदि वे शिक्षणालय प्रान्तीय सभाओं का निरीक्षण स्वीकार न करें तो आर्य जनता उन्हें आर्यसमाजी संस्था न माने।

६. प्रचारक संघ- बौद्धों ने अपने धर्म के प्रचार में जिन श्रमणों को नियुक्त किया, उनके आचार, व्यवहार, शिष्टाचार इत्यादि के नियम 'विनयपिटक' द्वारा निश्चित किये। ऐसा करने से श्रमण अपने नियमों का पालन करते हुये लोगों पर अधिक प्रभाव डाल सकते थे। आजकल भी अन्य धर्मों में नेताओं की बात तो दूर, साधारण जनता भी अपने-अपने धर्म के नियमों, उपनियमों का पालन बड़ी कड़ाई से करती है। **यह अचिन्त्य है कि कोई मुसलमान**

अपनी नमाज़ न पढ़े। यह अचिंत्य है कि कोई ईसाई अपनी प्रार्थना किये बिना रात को सो जाय। परन्तु हमारे आर्यसमाज में प्रजा की बात तो अलग है नेता तथा प्रचारक लोग भी संध्या नहीं करते, हवन नहीं करते, यज्ञोपवीत नहीं धारण करते, इसी से जनता पर उन प्रचारकों का यथेष्ट प्रभाव नहीं पड़ता। कांग्रेस की मीटिंग में से एक मुसलमान अपनी नमाज़ पढ़ने के समय उठकर चला जाता है, परन्तु हमारे आर्यसमाज के उत्सव और सभाएं होती ही प्राय: संध्या-वन्दन के समय पर हैं। जब नेताओं को ही सन्ध्या आदि का कुछ ध्यान नहीं आता तब सामान्य जनता का तो कहना ही क्या? अत: इन सब बातों पर ध्यान देकर प्रचारकों के आचार, व्यवहार तथा वेषभूषा आदि के नियम निश्चित हो जाने चाहियें तथा प्रचारकों को उनका पूर्णतया पालन करना चाहिये।

७. संगठन का मान- आर्यसमाज में संगठन की कमी है। जिस किसी आदमी को शिकायत होती है अथवा निर्वाचन से असन्तुष्ट होता है तो वह सीधा अख़बारों की शरण लेता है और एक ज़बर्दस्त आन्दोलन करना आरम्भ कर देता है। वस्तुत: उसे वैदिक रीति का अनुकरण करना चाहिये और इस बात से सम्बन्ध रखने वाली समाज की अन्तरङ्ग सभा अथवा प्रान्तीय प्रतिनिधि सभा या सार्वदशिक सभा का आश्रय लेकर अपनी बात का निर्णय कराना चाहिये। ऐसा करने से संगठन बढ़ेगा। **नियन्त्रणहीन समाज शीघ्र नष्ट हो जाता है।**

८. नियमों तथा उपनियमों का पालन- नये बने उपनियमों का हर तरह से पालन होना चाहिये। प्राय: इन नियमों की अवहेलना की जाती है। अनेकों सदस्य अभी तक मांसाहारी हैं अथवा कितने ही ऐसे हैं जो अपनी आमदनी का मासिक शतांश समाज को दान नहीं करते। समाजों के प्रधान तथा मन्त्री नियमों का पालन न करने वाले व्यक्तियों को भी समाज का सदस्य प्रमाणित करते हैं, जिससे आरम्भ में ही बेईमानी का सूत्रपात हो जाता है। आर्यसमाज में ऐसा बल होना चाहिये कि जो सभ्य नियमों की उपेक्षा करे उसे समाज से पृथक् कर दिया जाय।

९. आर्यसमाज के नेता- आर्यसमाज के नेता ऐसे होने चाहियें कि जो अपना पूरा समय समाज की सेवा में बिता सकें। काँग्रेस का प्रधान काँग्रेस के काम के अतिरिक्त दूसरा कोई काम नहीं करता, तब क्या आर्यसमाज के नेता और काम भी करते हुये समाज की यथोचित सेवायें कर सकते हैं? साथ ही **समाज की सेवा में अपना सारा समय देने वाले सज्जनों के भरण-पोषण का भार भी समाज पर ही होना चाहिये। आर्यसमाज के धनी-पुरुषों में एक घातक प्रवृत्ति बढ़ रही है, वे यह समझने लगे हैं कि जो व्यक्ति अपने निर्वाह के लिये कुछ लेकर काम करता है वह नौकर है इसलिये उसका नेतृत्व नहीं होना चाहिये।**

आर्यसमाज का काम मुख्य रूप से शिक्षा तथा प्रचार है। ईसाई लोग भी प्रचार एक बड़े पैमाने पर करते हैं, लेकिन उनके प्रचार का समस्त प्रबन्ध और नियन्त्रण वेतनभोगी (दक्षिणा लेने वाले) बिशपों एवं लाट पादरियों के हाथ में ही होता है। शासन का उत्तरदायित्व उन पूंजीपतियों के हाथ में नहीं होना चाहिये जो किन्हीं भी उपायों से धन का संचय करते रहते हैं और केवल अपनी आमदनी के बल पर साधुवृत्ति वाले प्रचारकों पर शासन करना चाहते हैं।

गवर्नमेन्ट के पास भी शिक्षा का काम आर्यसमाज की अपेक्षा कहीं ज्यादा है, परन्तु वेतनभोगी प्रिन्सिपल ही उस शिक्षा का अन्तरीय प्रबन्ध करते हैं, वेतनभोगी डायरेक्टर प्रिन्सिपलों के कार्य का निरीक्षण करते हैं और वेतनभोगी मिनिस्टर इन डायरेक्टरों की देख-रेख करते हैं। मिनिस्टरों के कार्य को परखने वाले भी असेम्बली के वेतनभोगी ही सदस्य होते हैं। ब्रिटिश पार्लियामेन्ट सम्पूर्ण ब्रिटिश साम्राज्य के लिये कानून बनाती है, उसमें वेतनभोगी बिशप तथा लाट पादरी भी होते हैं, उनकी सम्मति का मूल्य भी पूंजीपतियों की सम्मति के बराबर ही होता है। भारत के सेवाक्षेत्र में कार्य करने वाले जितने संघ हैं, उन सबको प्राय: पूर्ण स्वराज्य प्राप्त है, जैसे गाँधी सेवासंघ, सर्वेण्ट्स ऑफ़ दी पीपल सोसाइटी आदि।

संन्यासी भी वेतनभोगी होते हैं। क्योंकि वेतन का अर्थ यह नहीं है कि मास के अन्त में नियत धनराशि ही ली जाय। अत: वे सब भी वेतनभोगी ही समझने चाहिएं जिनके भरण-पोषण का भार समाज पर है। आर्यप्रतिनिधि

सभा पंजाब में कई भद्र पुरुषों ने एक बार ऐसा नियम पास करवा लिया था कि वेतनभोगी लोग शासनसम्बन्धी मन्त्रणा में भाग न लें, परन्तु महात्मा मुंशीरामजी का जब बस चला तो उन्होंने फौरन इस प्रस्ताव को रद्द करा दिया। संयुक्त-प्रान्त की आर्य प्रतिनिधि सभा ने भी ऐसे प्रस्ताव को ठुकरा दिया, लेकिन कई भाई इन दोनों प्रान्तों में दक्षिणा लेकर काम करने वालों को बदनाम करने पर तुले हुए हैं। यही कारण है कि पंजाब तथा संयुक्त-प्रान्त में कोई भी ऐसा निर्धन व्यक्ति जिसको अपनी जीविका का कोई अन्य साधन न हो, पूरे समय काम करने के लिए तैयार नहीं होता। परिणाम यह होता है कि वे लोग जो ५०-५५ वर्ष की अवस्था में रिटायर होकर समाज की सेवा करना चाहते हैं, इसलिए तैयार नहीं होते, क्योंकि कई भाई उनकी बदनामी करेंगे। अतः वे वृद्धावस्था में भी कमाते हैं और जब पर्याप्त धन जमा कर लेते हैं, तब काम करके योग्य न होने पर भी सेवा-कार्य संभालने को उद्यत होते हैं।

आर्यसमाज से बाहर भी यदि यही घातक प्रवृत्ति हमारे देश में होती तो महात्मा गाँधी हमारे सर्वमान्य नेता न बन पाते, क्योंकि वे भी २० वर्ष से वेतनभोगी ही हैं। चाहे इस शब्द की कटुता को दूर करने के लिए किसी और मधुर शब्द का प्रयोग ही क्यों न करें, परन्तु यह तो मानना ही पड़ेगा कि उनके पालन का भार सोसाइटी पर ही है। काँग्रेसी सरकारों की नीति का निर्णय गाँधीजी ही करते हैं और अपना वेतन भी प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप में लेते हैं।

संसार में सभी वेतनभोगी हैं, परन्तु ब्राह्मण और वैश्यों में भेद होता है। ब्राह्मण work-first-man तथा वैश्य fee first-man होते हैं। आर्यसमाज का दुर्भाग्य है कि यहाँ वैश्य ब्राह्मणों के अफ़सर होकर उन्हें अपने मातहत करना चाहते हैं। ब्राह्मण सेवा करते हैं और दक्षिणा स्वीकार करते हैं, परन्तु वकील तथा ठेकेदार पहले फ़ीस रखवा लेते हैं फिर सेवा का नाम लेते हैं। इस पर भी वैश्य लोग ब्राह्मणों को अपना नौकर समझ कर उन्हें अपमानित करने की कोशिश करते हैं। यदि इस प्रवृत्ति का एकदम गला न घोंटा गया तो यह आर्यसमाज को ले डूबेगी और समाज की सेवा में कोई भी अनुभवी एवं त्यागी मनुष्य आने से झिझकेगा।

ऋषि मेला २०१८ हेतु स्टॉल आवंटन

प्रति वर्ष की भांति इस वर्ष ऋषि मेला १६, १७, १८ नवम्बर शुक्र, शनि, रविवार २०१८ को ऋषि उद्यान में आयोजित होगा। उसमें आर्य जगत् का साहित्य, हवन सामग्री, अन्यान्य सामग्री की स्टॉल लगती हैं। प्रति स्टॉल किराया १००० रु. निर्धारित है। जिसकी राशि पहले जमा होगी उसी क्रम से स्टॉल का आवंटन होगा। जिन महानुभावों को जितनी स्टॉल की आवश्यकता है, उसी अनुरूप राशि बैंक ड्राफ्ट द्वारा या नकद जमा करावें।

स्टॉल सुविधाः- कारपेट, दो टेबल, दो कुर्सी, २ ट्यूब लाइट प्रति स्टॉल। **स्टॉल साइज**- ७.५×१५ फीट।

ध्यातव्य- **१.** स्टॉल में रखी टेबल, कुर्सी आदि पूर्व निर्धारित सामग्री को इधर-उधर या अन्य स्टॉल में न बदलें। **२.** अतिरिक्त सामग्री की आवश्यकता हो तो टैन्ट हाउस के कर्मचारी से सम्पर्क कर प्राप्त करें तथा निर्धारित राशि तुरन्त भुगतान करें। **३.** बिस्तर, रजाई, चादर, तकिया को टेन्ट हाउस कर्मचारी से प्राप्त कर निर्धारित राशि जमा करा दें। **४.** स्टॉल व्यवस्थापक से स्टॉल संख्या, राशि की रसीद दिखाकर प्राप्त करें। बिना पूर्व अनुमति के स्टॉल में सामान न रखें, न अधिकृत करें। **५.** आपके सक्रिय सहयोग व अनुशासन की अपेक्षा है। अनियमितता को स्थान न देवें। ६. अपना मोबाइल (चलभाष) नवम्बर देना अति आवश्यक है। ७. आप अपना स्थाई पता अवश्य देवें। ८. स्टॉल में आप पुस्तकें/दवाइयाँ/अन्य सामग्री का उल्लेख अवश्य करें। ९. स्टॉल आवंटन हेतु अग्रिम राशि जमा करावें, अन्यथा विचार सम्भव नहीं होगा। १०. एक पासपोर्ट फोटो भिजवावें, जो परिचय पत्र के साथ अंकित हो। उसमें स्टॉल आवंटन संख्या भी अंकित किया जाएगा। ११. स्टॉल आवंटन की सूचना निर्धारित अवधि में दी जायेगी। **नोटः**- किसी प्रकार का अवैदिक साहित्य एवं सामग्री न हो अन्यथा उचित कार्यवाही सम्भव होगी।

'सत्यार्थ प्रकाश' प्रचार महायज्ञ में आपकी आहुति

महर्षि दयानन्द सरस्वती का अमर ग्रन्थ 'सत्यार्थप्रकाश' आर्यों का ब्रह्मास्त्र है। ऐसा ब्रह्मास्त्र, जिसने अविवेक, पाखण्ड, अन्धविश्वासों का दमन कर समाज में एक नई क्रान्ति 'वैचारिक क्रान्ति' को जन्म दिया। अन्धश्रद्धा, अविवेक और पाखण्ड मानव समाज में सहज ही पनपने वाली समस्या है, इसलिये प्रत्येक काल, प्रत्येक स्थान और प्रत्येक परिस्थिति में इन समस्याओं के उन्मूलन की आवश्यकता है-अत: 'सत्यार्थ प्रकाश' की आवश्यकता भी सदैव ही अनिवार्य रहेगी, परन्तु यह विचार जन-जन तक पहुँचे, तो ही लाभकारी होगा। इसी को ध्यान में रखते हुए परोपकारिणी सभा ने ५ वर्ष पूर्व 'विश्व पुस्तक मेला' दिल्ली में प्रतिवर्ष 'सत्यार्थप्रकाश' के साथ 'महर्षि का जीवन-चरित्र' एवं 'आर्याभिविनय' पुस्तक का नि:शुल्क वितरण करने की योजना बनाई, जो निरन्तर चल रही है। इस कार्य के परिणाम भी बहुत सुखद रूप में सामने आये हैं। पुस्तक में कई व्यक्ति आकर कहते हैं कि हमारे पास यह पुस्तक है, हम पिछले वर्ष ले गये थे।

प्रत्येक आर्यमात्र की यह इच्छा होगी कि वह भी इस ग्रन्थ को वितरित कर पुण्य का भागी बने। इसके लिये सभा प्रत्येक आर्य को इस महायज्ञ में सम्मिलित करना चाहती है। प्रत्येक व्यक्ति यज्ञ में अपनी आहुति दे तो यज्ञ और अधिक भव्य एवं विस्तृत हो जाता है। 'सत्यार्थप्रकाश' के नि:शुल्क वितरण रूपी यज्ञ में अपनी आहुति देने के लिये आप अपने सामर्थ्यानुसार सहयोग दे सकते हैं। परोपकारिणी सभा की ओर से प्रकाशित सत्यार्थप्रकाश बड़े अक्षरों में, बढ़िया कागज पर, सजिल्द छापी जाती है, जिससे नये व्यक्ति के लिये भी पुस्तक संग्रहणीय बन जाती है। इस पुस्तक की छपाई में एक प्रति का खर्च लगभग १०० रु. आता है। **यदि कोई व्यक्ति अपनी सात्त्विक भावना से केवल २० पुस्तकें (इससे अधिक कितनी भी) ही वितरित करवाना चाहता है, तो सभा उतनी प्रतियों पर दानी व्यक्ति का नाम छपवाकर वितरित करेगी। इसी प्रकार ३०, ५०, १०० आदि।**

१०० रु. प्रति के अनुसार आप दान देकर अपनी ओर से, अपने नाम से पुस्तक वितरित करा सकते हैं। आहुतियाँ जितनी अधिक होंगी, यज्ञ का फल भी उतना ही अधिक होगा।

अपने दान के साथ 'सत्यार्थप्रकाश वितरण' अवश्य लिख देवें, और साथ ही अपना नाम एवं पता भी। यह दान आप परोपकारिणी सभा के खाते में ऑनलाइन, चैक द्वारा या फिर परोपकारिणी सभा के पते पर मनिऑर्डर भी कर सकते हैं। यह यज्ञ आपका है, प्रत्येक आर्य का है। अत: प्रत्येक आर्य इसमें अपनी आहुति अवश्य दे।

न्यूनतम	२० प्रतियाँ	२१००/- रु.
	३० प्रतियाँ	३१००/- रु.
	५० प्रतियाँ	५१००/- रु.
	१०० प्रतियाँ	११०००/- रु.

इस प्रकार जितनी अधिक प्रतियाँ बाँटना चाहें, उतनी और दूरभाष संख्या के साथ भेज देवें। दान अक्टूबर माह के अन्त तक भिजवा देवें, ताकि प्रतियों की संख्या निर्धारित करके उन पर दानदाताओं का नाम अंकित किया जा सके। धन्यवाद।

मन्त्री, परोपकारिणी सभा, अजमेर

खाताधारक का नाम - परोपकारिणी सभा, अजमेर (PAROPKARINI SABHA AJMER)

१. बैंक बचत खाता (Savings) संख्या-091104000057530 बैंक का नाम-आई.डी.बी.आई. बैंक, पावर हाउस के सामने, जयपुर रोड, अजमेर।

IFSC - IBKL0000091

२. बैंक बचत खाता (Savings) संख्या - 10158172715 बैंक का नाम - भारतीय स्टेट बैंक, डिग्गी बाजार, अजमेर।

IFSC - SBIN0007959

महर्षि दयानन्दोत्तर आर्यसमाज की हिन्दी-सेवा

डॉ. जगदेव विद्यालंकार

दस अप्रैल सन् १८७५ को सायंकाल साढ़े पाँच बजे गिरगाँव में माणिक जी की कोठी पर काकड़वाड़ी मुम्बई में स्वामी दयानन्द सरस्वती ने आर्यसमाज की स्थापना की। स्वामी दयानन्द के देहावसान के उपरान्त स्वामी श्रद्धानन्द (महात्मा मुन्शीराम) पंडित लेखराम, गुरुदत्त विद्यार्थी, लाला हंसराज प्रभृति विद्वानों ने उत्साह एवं कर्मठता, त्याग एवं समर्पण भाव से आर्यसमाज के समग्र कार्यक्रम का प्रसार किया। महर्षि दयानन्द द्वारा निर्दिष्ट वेद-प्रचार, संस्कृति-रक्षा, संस्कृत भाषा एवं आर्य भाषा का प्रसार, सती-प्रथा एवं बाल विवाह आदि कुप्रथाओं का उन्मूलन तथा विधवा-विवाह और नारी-शिक्षा के समर्थन के द्वारा नारी जाति का उद्धार, गोरक्षा, जाति-रक्षा का उन्मूलन आदि सामाजिक सुधार के लिए आर्यसमाज के श्यामजी कृष्ण वर्मा, स्वामी दर्शनानन्द, लाला लाजपतराय, महात्मा नारायण स्वामी, भाई परमानन्द, स्वामी स्वतन्त्रानन्द, स्वामी आत्मानन्द, आचार्य रामदेव, पं. गंगाप्रसाद उपाध्याय, महात्मा आनन्द स्वामी, प्रो. इन्द्र विद्यावाचस्पति, स्वामी ओमानन्द एवं डॉ. धर्मवीर प्रभृति अनेक उपदेशकों और दादा बस्तीराम , कुंवर सुखलाल, कवि प्रकाश, पृथ्वीसिंह बेधड़क, महाशय तेजसिंह, चौ. ईश्वरसिंह, स्वामी नित्यानन्द, कुंवर जौहरीसिंह, सत्यपाल पथिक प्रभृति अनेक भजनोपदेशकों ने प्रभूत कार्य किया। यद्यपि उक्त महानुभावों ने सभी क्षेत्रों में सुधार कार्य किए, परन्तु प्रस्तुत लेख में आर्यसमाज की हिन्दी-सेवा पर प्रकाश डालना अभिप्रेत है।

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, परोपकारिणी सभा, विभिन्न प्रान्तीय आर्य-प्रतिनिधि सभाओं एवं अन्य अनेकानेक स्वतन्त्र सभाओं के उपदेशकों ने देश के विभिन्न भागों में हिन्दी का प्रचार किया। आर्यसमाज के देशव्यापी आन्दोलन की ओर अन्य व्यक्ति भी आकर्षित हुए और उन्होंने आर्यसमाज के दृष्टिकोण और उनके उद्देश्यों को समझने के लिए हिन्दी का अध्ययन किया। कितने ही स्थानों पर हिन्दी-सम्मेलन हुए। अनेक लोगों ने केवल सत्यार्थप्रकाश पढ़ने के लिए हिन्दी सीखी।

उर्दू प्रधान प्रान्त होते हुए भी पंजाब में समाज की समस्त कार्यवाही हिन्दी में की जाने लगी। भारत के सभी प्रान्तों में स्वतन्त्र आर्य प्रतिनिधि सभाओं के संगठन ने हिन्दी को पर्याप्त विकसित किया। इसके अतिरिक्त भारतवर्षीय आर्य कुमार सभा ने धर्मोपदेश के साथ-साथ आर्यभाषा और देवनागरी लिपि का प्रचार करना अपना उद्देश्य बनाया।

आर्यसमाज की शिक्षण-संस्थाओं द्वारा हिन्दी प्रचार-

आर्यसमाज के अन्तर्गत सहस्त्रों शिक्षा संस्थायें हिन्दी की अत्यधिक सेवा और उन्नति कर रही हैं। गुरुकुल अध्यापकों, अन्तर्गत संस्थाओं, पुस्तक-प्रकाशन तथा साहित्य के प्रत्येक अंग को पुष्ट करने का श्रेय गुरुकुल के हिन्दी पत्रों के सम्पादक गुरुकुल के स्नातक पाये जाते हैं। आचार्य रामदेव, पं. चन्द्रगुप्त विद्यालंकार, पं. जयचन्द्र विद्यालंकार तथा स्वामी अभयदेव प्रभृति विद्वानों ने अनेक हिन्दी ग्रन्थों की रचना की। भौतिकी और रसायन विज्ञान की हिन्दी पुस्तकें सर्वप्रथम गुरुकुल काँगड़ी ने प्रकाशित कीं।

इसके अतिरिक्त गुरुकुल वृन्दावन, ज्वालापुर महाविद्यालय, गुरुकुल झज्जर, गुरुकुल कुरुक्षेत्र, खानपुर नरेला, देहरादून, हाथरस एवं चोटीपुरा आदि कन्या गुरुकुल दयानन्द एंग्लो विद्यालय एवं महाविद्यालय आदि अनेक शिक्षा-संस्थाएँ हिन्दी सेवा में प्रमुख स्त्रोत रहे हैं।

आर्यसमाज की स्थापना के समय तक खड़ी बोली अविकसित दशा में भी। उसको प्राञ्जल एवं परिमार्जित रूप देने के लिये आर्यसमाज के निम्नलिखित विभिन्न पत्र एवं पत्रिकाओं ने अत्यधिक कार्य किया है। पंजाब ने प्रताप, मिलाप आदि उर्दू समाचार पत्रों द्वारा हिन्दी-प्रचार की जो सेवा की वह अविस्मरणीय है क्योंकि इनकी उर्दू लिपि में भी हिन्दी भाषा का ही प्रचार था। आर्य सन्देश, आर्य मर्यादा, आर्य-मित्र, आर्य संसार, आर्यजगत्,

आर्यमार्ताण्ड, दयानन्द-सन्देश, परोपकारी, सुधारक, वेदवाणी, प्रचुर मात्रा में प्रचार हुआ है।

आर्यसमाज का गद्य-साहित्य-

वस्तुत: आर्यसमाज के प्रचार साहित्य ग्रन्थों, शास्त्रार्थों, व्याख्यानों के कारण ही हिन्दी गद्य पुष्ट हुआ। उसमें तर्क, बल, ओज और व्यंग्य का सम्मिश्रण हुआ। इतिहास, भाषा-विज्ञान, भूगोल, दर्शन, चिकित्सा-शास्त्र, विज्ञान, साहित्य, राजनीति, समाज-शास्त्र आदि अनेक विषयों पर आर्य विद्वानों के उच्चकोटि के ग्रन्थ उपलब्ध हैं। स्वामी सत्यानन्दकृत 'श्रीमद्दयानन्दप्रकाशं' में कहीं-कहीं गद्य-काव्य का ऐसा आभास होता है, जिसके कारण इसके साहित्यिक मूल्य की उपेक्षा नहीं की जा सकती। 'स्वर्ग में महासभा' 'कण्डी जनेऊ का ब्याह' 'स्वर्ग में सब्जेक्ट-कमेटी' आदि प्रहसनों के लेखक पं. रुद्रदत्त जी का नाम भी अत्यन्त प्रसिद्ध है। आर्यसमाजी कहानीकार सुदर्शन की उपन्यासकार मुंशी प्रेमचन्द और यशपाल भी आर्यसमाज से प्रभावित हैं।

आर्यसमाज और हिन्दी पद्य साहित्य-

यद्यपि परिमार्जित पद्य साहित्य का आर्यसमाज में अभाव सा है, परन्तु फिर भी भजनों द्वारा इन्होंने पर्याप्त हिन्दी-प्रसार किया है। चौ. नवलसिंह की लावनिओं ने लाहौर में धूम मचा दी थी। भजनीकों का भी हिन्दी-काव्य पर प्रभाव पड़ा है। अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध, राम-चरित उपाध्याय, मैथिलीशरण गुप्त ने आर्यसमाज के अवतारवाद खण्डन से प्रभावित होकर राम और कृष्ण को यथासम्भव मानव चरित्र के रूप में चित्रित किया है।

भजनों के अतिरिक्त 'अुनराग रत्न' 'शंकर-सरोज' 'शंकर सर्वस्व' के रचयिता पं. नाथूराम शर्मा शंकर, कवि प्रकाश और पं. हरिशंकर शर्मा तथा डॉ. सूर्यदेव शर्मा आदि हिन्दी पद्य के निर्माता भी आर्यसमाज के उत्पन्न किए। गुरुकुल काँगड़ी के अध्यापक स्वर्गीय ठाकुर गदाधरसिंह जी ने दयानन्दायन नामक प्रबन्ध-काव्य की रचना की थी।

साहित्य क्षेत्र में पं. धीरेन्द्र वर्मा ने हिन्दी भाषा का इतिहास, डॉ. बाबूराम सक्सेना ने सामान्य भाषा विज्ञान हरिशंकर शर्मा ने 'रस रत्नाकर' आचार्य विश्वेश्वर ने काव्य-प्रकाश, वक्रोक्ति जीवित आदि की सारगर्भित हिन्दी व्याख्या, पद्मसिंह शर्मा ने 'बिहारी सतसई' का भाष्य तथा डॉ. मुंशीराम शर्मा ने भारतीय साधना और सूर साहित्य पर प्रबन्ध रचना आदि कृतियाँ प्रस्तुत की हैं। ये सभी आर्यसमाजी विद्वान् हैं।

आर्यसमाज द्वारा विदेशों में हिन्दी कार्य-

आर्यसमाज का सर्वाधिक कार्य अफ्रीका में हुआ। सर्वप्रथम भाई परमानन्द जी ने धार्मिक सुधार के साथ हिन्दी-प्रचार का क्षेत्र भी अफ्रीका में तैयार किया। तत्पश्चात् उद्भट वक्ता स्वामी शंकरानन्द जी ने आध्यात्मिक कवि के साथ-साथ मातृभाषा की महत्ता पर प्रकाश डाल अनेक संस्थाओं की भी नींव डाली। दक्षिणी अफ्रीका में हिन्दी सेवा करने का सर्वाधिक श्रेय श्री भवानीदयाल जी संन्यासी को है। पं. सत्यपाल जी ने तो हिन्दी प्रचारार्थ अफ्रीका में अपना घर ही बना लिया था। इसके अतिरिक्त केनिया, युगांडा, टांगानिका, मौरिशस, फीजी, डच गायना, ट्रिनीडाड, ब्रिटिश गायना तथा इग्लैण्ड आदि विभिन्न देशों में मूर्धन्य आर्य विद्वानों ने हिन्दी प्रचार किया।

सन् १९५७ में पंजाब सरकार के विरुद्ध किये गय हिन्दी-आन्दोलन ने भी हिन्दी को सबल बनाया, जिसमें भाग लेने वाले व्यक्तियों में अधिकतर आर्यसमाजी ही थे। नया बाँस निवासी आर्यसमाजी युवक सुमेर सिंह का इस आन्दोलन में बलिदान भी हुआ था।

अन्तत: कहा जा सकता है कि भाषा और साहित्य दोनों दृष्टियों से आर्यसमाज ने हिन्दी को सशक्त और सबल बनाया, परन्तु दुर्भाग्य से सरकार ने हिन्दी भाषा को उचित स्थान और सम्मान प्रदान नहीं किया।

६६७-ए२९ तिलकनगर, रोहतक, हरियाणा

उन्नति का कारण सत्योपदेश

जिससे मनुष्य जाति की उन्नति और उपकार हो, सत्यासत्य को मनुष्य लोग जानकर सत्य का ग्रहण और असत्य का परित्याग करें क्योंकि सत्योपदेश के बिना अन्य कोई भी मनुष्य जाति की उन्नति का कारण नहीं है। **(स. प्र. ३)**

१४ अक्टूबर जयन्ती पर विशेष

महापण्डित श्री ब्रह्मदत्त जिज्ञासु का पुण्य स्मरण

डॉ. प्रशस्यमित्र शास्त्री

विगत अक्टूबर २०१७ को जब श्री ब्रह्मदत्त जी जिज्ञासु के जीवन का १२५वाँ अर्थात् शताब्दोत्तर रजत जयन्ती वर्ष पूरा हो रहा था, तभी मेरे मन में उनके सन्दर्भ में एक संस्मरण लिखने का विचार आया था, परन्तु किसी कारणवश वह पूरा न हो सका। अब जब अक्टूबर २०१८ में १२६वाँ वर्ष पूरा होने वाला है तभी माननीय ज्योत्स्ना जी का फोन आया कि मैं उनके सन्दर्भ में इस वर्ष अवश्य कुछ लिखूँ, अतः लिखने का उत्साह पुनः जागृत हो गया।

इस समय श्री जिज्ञासु जी के उन साक्षात् शिष्यों में, मेरी जानकारी के अनुसार केवल दो ही व्यक्ति जीवित हैं जो वाराणसी के आश्रम में उनके समय पढ़ रहे थे तथा जिनको गुरुजी ने स्वयं पढ़ाया था। एक तो मैं स्वयं हूँ तथा दूसरे पाणिनि कन्या महाविद्यालय वाराणसी की संस्थापिका श्री डॉ. प्रज्ञादेवी जी के भाई आचार्य सुद्युम्न जी। इनके अतिरिक्त भी संभव है २-४ अन्य शिष्य भी जीवित हों परन्तु वे आर्यसमाज के संघटन या गुरुकुल की परम्परा से दूर कहीं एकान्त में पड़े हो सकते हैं या उनका कोई सामाजिक जीवन न हो।

मैं जब प्रथम बार जुलाई १९६१ में वाराणसी स्थित उनके आश्रम या पाणिनि महाविद्यालय में अध्ययन करने गया, मेरी आयु १४-१५ वर्ष की थी। इससे पूर्व मैं अयोध्या गुरुकुल में तीन वर्ष पढ़ चुका था तथा मेरा उपनयन संस्कार भी गुरुकुल अयोध्या के संस्थापक स्वामी त्यागानन्द जी ने ही कराया था। मैंने प्रथम बार जब वाराणसी आकर अपने पिताजी के साथ जिज्ञासु जी का दर्शन किया, तत्काल अभिभूत एवं मन्त्रमुग्ध हो गया। श्वेत केशराशि एवं दाढ़ी-मूँछ उनके भव्य व्यक्तित्व को जहाँ प्रभावात्मक बनाकर आकृष्ट करती थीं, वहीं उनकी तीक्ष्ण आँखें भी मन में कुछ भय एवं झिझक उत्पन्न करती थीं।

नारिकेल-समाकाराः -

सज्जन व्यक्ति की पहचान के लिए उक्ति है कि ये लोग नारियल के फल के समान ऊपर से तो कठोर प्रतीत होते हैं, परन्तु भीतर से कोमल, सरस एवं रोचक होते हैं। जिज्ञासु जी का व्यक्तित्व भी कुछ ऐसा ही था। देखने में भले ही वे कठोर लगते थे, परन्तु बात करते ही उनका सरल एवं अन्दर का कोमल व्यक्तित्व अनायास ही प्रकट होने लगता था, परन्तु पठन-पाठन के समय उनका रोष बहुत कम दिखता था। आश्रम के सामान्य नियम का उल्लंघन होने पर वे बहुत शीघ्र क्रुद्ध हो जाते थे। जिन कुछ लोगों ने उनका दण्ड का प्रहार झेला है उनमें मैं भी हूँ, परन्तु बाद में उन्हें पश्चात्ताप भी होता था तथा अलग से बुलाकर समझाते थे।

मुझे कई बार उनके साथ आर्यसमाज के उत्सवों में जाने का भी अवसर मिला था। जैसा कि प्रायः होता है, गुरुकुल के आचार्य के साथ दो-एक शिष्य भी जाते हैं, वैसा ही मुझे भी आर्यसमाज मुगलसराय अथवा वाराणसी के बुलानाला आर्यसमाज अथवा लल्लापुरा आर्यसमाज के उत्सवों में साथ जाने का अवसर मिला। मैंने अनुभव किया कि उनका भाषण भले ही वेद या वेद के किसी मन्त्र के अर्थ के साथ प्रारम्भ होता हो परन्तु अन्त में वे अष्टाध्यायी एवं आर्ष पाठविधि की विशेषता पर आकर समाप्त होने लगता था। कभी-कभी तो पूर्णरूप से अष्टाध्यायी के किसी सूत्र पर-विशेष रूप में **''स्थानिवदादेशोऽनल्विधौ''** सूत्र की विशेष व्याख्या पर केन्द्रित होने लगता था। यह सामान्य श्रोताओं के लिए तो रोचक कत्तई नहीं था। वे ऊबने लगते थे। इस दृष्टिकोण से देखा जाए तो उनका भाषण स्टेज के लिए रोचक या प्रभावास्पद नहीं लगता था, परन्तु एक बात अवश्य थी और वह कि श्रोताओं को आर्ष पाठविधि एवं अष्टाध्यायी पद्धति के अनुसार संस्कृत पढ़ने का भाव या संकल्प ग्रहण करने में सहायक सिद्ध होता था।

आर्ष पाठविधि के अद्भुत प्रचारक-

श्री जिज्ञासु जी आर्ष पाठविधि के क्रियात्मक प्रचारक के रूप में आर्यजगत् में बहुत विख्यात हो गए थे। मुझे ज्ञात

है कि उन दिनों अनेक गुरुकुलों से अष्टाध्यायी क्रम या प्राचीन व्याकरण की काशिका, महाभाष्य आदि की पद्धति के अनुसार पढ़ाने तथा गुरुकुलों में भी जो विद्यार्थी शास्त्री, आचार्य आदि की परीक्षा प्राचीन व्याकरण लेकर देना चाहते उन्हें पढ़ाने के लिए आचार्यों की आवश्यकता का पत्र जिज्ञासु जी के पास भेजा करते थे। जिज्ञासु जी यथासंभव उनका प्रबन्ध भी करते थे।

जब पहली बार अष्टाध्यायी की प्रथमावृत्ति का प्रकाशन हिन्दी में करने का निश्चय किया गया तो उसके लेखन का गुरुतर भार उन्होंने प्रज्ञादेवी जी को दिया तथा उसके संशोधन एवं विचार के लिए आर्ष गुरुकुल एटा के तत्कालीन आचार्य पं. श्री ज्योतिः स्वरूप जी को भी निमन्त्रित किया। वास्तव में प्रथमावृत्ति के प्रकाशन के लेखक के रूप में भले ही नाम श्री जिज्ञासु जी छपा, परन्तु सारा कार्य एवं परिश्रम श्री प्रज्ञादेवी जी ने ही किया था। उनके सलाहकार के रूप में श्री पं. विजयपाल जी आचार्य तथा श्री पं. ज्योतिःस्वरूप जी ही प्रमुख थे। मैं उन दिनों काशिका की द्वितीयावृत्ति पढ़ रहा था। प्रथमावृत्ति के अन्तिम प्रूफ के संशोधन के लिए एक गलती पर उन दिनों दस पैसे का पारितोषिक दिया जाना तय हुआ था। हम सब अनेक छात्र प्रूफ की गलतियाँ ढूँढने में लगे रहते थे तथा पारितोषिक प्राप्त करने को उत्सुक रहते थे। अनेक छात्रों को एक फर्मे के संशोधन में तीन या चार रुपये पारितोषिक में प्राप्त हो जाते थे। यह हमारे लिए महती प्रसन्नता की बात उन दिनों होती थी। मुझे तो आश्रम में प्रूफ देखने की शिक्षा १५-१६ वर्ष की आयु में इसी कारण प्राप्त हो गई थी।

आश्रम की छात्रवृत्तियाँ-

उन दिनों आश्रम में भोजन का कुल मासिक व्यय १५-२० रुपये ही आया करता था। मुझे १० रुपये की छात्रवृत्ति जो मिलती थी, वह महात्मा प्रभुआश्रित जी द्वारा प्रदान की गई थी। बाद में १० रुपये की छात्रवृत्ति जम्मू विश्वविद्यालय की प्राध्यापिका डॉ. वेदकुमारी घई ने भी प्रदान की थी। इस प्रकार २० रुपये में मेरा आश्रम का व्यय जिज्ञासु जी ने प्रदान किया था।

आश्रम में आने वाले छात्रों को वे पहले वर्ष कोई छात्रवृत्ति नहीं देते थे। उनकी इच्छा थी कि देखें कि यह छात्र पढ़ने के प्रति कितना गंभीर और लगनशील है। अतः प्रथम वर्ष की व्यवस्था छात्र स्वयं अपने स्रोत या भिक्षा आदि के द्वारा ही करते थे।

मैं अभी तीन वर्ष पूर्व जब जम्मू विश्वविद्यालय गया तो ८० वर्षीय डॉ. वेदकुमारी जी को बताया कि आपने १० रुपये मासिक छात्रवृत्ति गुरुजी के आश्रम वाराणसी में प्रदान की थी तो वे आश्चर्यमिश्रित प्रसन्नता व्यक्त करते हुए बोलीं कि हम लोग तो छात्रवृत्ति भेज देते थे, किसको कहाँ, कैसे मिल रही है यह सब तो गुरुजी ही जानते थे।

तात्पर्य कहने का यही है कि उन दिनों श्री जिज्ञासु जी के एक पत्र के द्वारा ही अनेक प्रतिष्ठित एवं गणमान्य लोग छात्रवृत्तियाँ प्रदान करते थे जो उनके निःस्पृह व्यक्तित्व का परिचायक था।

जिज्ञासु जी एवं ट्रस्ट परिवार-

जिज्ञासु जी को आर्थिक चिन्ता से मुक्त कर आश्रम एवं प्रकाशन विभाग चलाने में रामलाल कपूर ट्रस्ट के पारिवारिक सदस्यों का सहयोग अविस्मरणीय रहेगा। आज जो 'वेदवाणी' मासिक पत्रिका छप रही है, वह वास्तव में प्रारम्भिक दिनों में ट्रस्ट द्वारा संचालित पत्रिका नहीं थी। वह तो वाराणसी के कुछ विद्वान् आर्यजनों द्वारा पत्रिका प्रकाशित की जा रही थी, जिनमें ''पं. भानुचरण जी आर्षेय'' आदि प्रमुख थे। भारत विभाजन के बाद जब गुरुजी वाराणसी आए तो इस पत्रिका की स्थिति डांवाडोल थी। गुरुजी ने रामलाल कपूर ट्रस्ट के माध्यम से इस पत्रिका को जीवन प्रदान किया तथा इसे ट्रस्ट द्वारा संचालित किये जाने पर तथा जिज्ञासु जी के सम्पादक नियुक्त हो जाने पर ही इसे प्रतिष्ठा प्राप्त हुई। उन दिनों पत्रिका के ऊपर कवर पेज पर ''रामलाल कपूर ट्रस्ट द्वारा संचालित मासिक पत्रिका'' यह लिखा जाने लगा।

वाराणसी जैसे गहन पौराणिक विचारधारा के पण्डितों के बीच में बैठकर जो प्रतिष्ठा एवं ख्याति जिज्ञासु जी ने पाई वैसी प्रतिष्ठा अन्य कोई भी आर्यसमाजी नहीं प्राप्त कर सका। यह उनका ही प्रभाव था कि जब वे संस्कृत विश्वविद्यालय के सीनेट के लिए निर्वाचित हुए तो डॉ. मंगलदेव जी के सहयोग से उन्होंने विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रम में प्राचीन व्याकरण एवं आर्ष पाठविधि को

प्रतिष्ठित किया तथा आचार्य परीक्षा में सम्पूर्ण महाभाष्य पाठ्यक्रम में निर्धारित कराया। उन्हें इस बात का बहुत आश्चर्य होता था कि नव्य व्याकरण में आचार्य होने के बाद भी व्यक्ति पातञ्जल महाभाष्य से बिल्कुल ही अपरिचित रहे अथवा केवल ''नवाह्निक'' मात्र ही पढ़ सके।

आर्ष पाठविधि में कन्या शिक्षा में क्रान्ति के सूत्रधार-

जिज्ञासु जी का वाराणसी वाला आश्रम कोई बहुत बड़ा या विशाल परिसर वाला नहीं था। वह तो किराए के ४-५ बड़े-बड़े कमरों में चलता था, परन्तु नगर से दूर एकान्त में होने के कारण मोतीझील नामक प्रांगण में होने से विशालता का बोध कराता था। आश्रम से कुछ दूरी पर ही २ या ३ कमरों का एक और मकान था, वह भी किराए पर ही था। उस मकान में जिज्ञासु जी की शिष्या प्रज्ञादेवी जी रहती थीं। जिज्ञासु जी की मृत्यु के बाद ही प्रज्ञाजी ने उनकी स्मृति में कन्या पाणिनि महाविद्यालय की स्थापना की। कभी-कभी मैं सोचता हूँ कि यदि प्रज्ञादेवी जी को गुरुजी ने व्याकरण महाभाष्य एवं आर्ष पाठविधि की शिक्षा न दी होती तो आज के इस युग में प्राचीन अष्टाध्यायी के माध्यम से शिक्षित अनेक गुरुकुल की आचार्याएँ कहाँ से उपलब्ध हो पातीं? पुरुषों का संस्कृत व्याकरण पढ़ाना उन दिनों आसान था, परन्तु किसी महिला को व्याकरण-शास्त्र में पारंगत करना कितना कठिन होता है यह तो वही जान सकता है जिसने उसे पढ़ा है।

आज आचार्या प्रज्ञादेवी जी की शिष्याएँ जैसे- प्रियंवदा, नन्दिता, सूर्या, धारणा, माधुरी जी आदि उनसे पढ़कर संस्कृत व्याकरण एवं आर्ष पाठविधि की पताका समाज में फहरा रही हैं। उन दिनों किस प्रकार पुरुषों के साथ ही महिलाओं को भी गुरुजी ने शिक्षित किया, यह उनके ही अद्‌भुत व्यक्तित्व की विशेषता थी।

परोपकारिणी सभा और जिज्ञासु जी -

श्री पं. ब्रह्मदत्त जी जिज्ञासु परोपकारिणी सभा के भी सदस्य रहे। मैंने पहली बार जब अजमेर की यात्रा की थी, तब उनके साथ ही संभवतः १९६३ या १९६४ में सहायक विद्यार्थी के रूप में आया था। परोपकारिणी सभा की उस मीटिंग में शारदा परिवार के कोई सदस्य संभवतः मन्त्री या प्रधान के रूप में उपस्थित थे। उन्होंने अपने घर उन्हें चलने को कहा तो उन्होंने जाने से मना कर दिया था तथा उसी प्रांगण में ठहर गये थे। संभवतः सरस्वती भवन या किसी कमरे में ही ठहरने की व्यवस्था थी।

अगले दिन उन्होंने वेदभाष्य की कोई हस्तलिखित कॉपी देखनी चाही तो किसी सदस्य ने कहा कि आप एवं मीमांसक जी यहाँ का हस्तलेख भी देखते हो तथा बाद में परोपकारी द्वारा प्रकाशित वेदभाष्य की आलोचना भी करते हो तथा हस्तलेख से मिलाकर अपना प्रकाशन सही है तथा परोपकारिणी का प्रकाशन गलत है यह सिद्ध करते हो, यह ठीक नहीं है। गुरुजी ध्यानपूर्वक गंभीरता से उनकी बात सुनते रहे तथा बहुत धीमे से कहा कि युधिष्ठिर जी तो अजमेर में रहते हैं- उन्हें आप हस्तलेख दिखाओ या नहीं यह तो आप लोग जानें। पर मैं तो वाराणसी से केवल वह हस्तलेख देखने आया हूँ। मीटिंग तो एक कारण है वास्तव में मुझे वह हस्तलेख देखना है...आदि। अन्त में बहुत वाद-विवाद बढ़ा तो शारदा बाबू ने हस्तक्षेप करते हुए कहा कि जिज्ञासु जी से ऐसी बातें मत कहो। युधिष्ठिर जी का भाव अन्य है, कृपया हस्तलेख इन्हें पढ़ने के लिए दे दो।

मैं यह सब वितण्डा वहाँ देख रहा था। उस समय युधिष्ठिर जी भी वहाँ विद्यमान थे, परन्तु जिज्ञासु जी के चेहरे पर कोई रोष या अपमान-बोध का भाव नहीं था। मैं तो तब तक इन हस्तलेखों का महत्त्व कुछ समझता भी नहीं था। आज जब हस्तलेखों के मिलान से 'सत्यार्थप्रकाश' और वेदभाष्यों के पाठ पर होने वाले विवादों को पढ़ता और देखता हूँ तो उन दिनों का स्मरण अनायास ही हो उठता है।

मैंने यह भी अनुभव किया कि मीमांसक जी को जितनी शिकायत हस्तलेखों के अध्ययन, तुलना या आक्षेप आदि से थीं उतनी तो जिज्ञासुजी के मन में कहीं भी नहीं थी। शायद यह उनका बड़प्पन या गंभीरता ही रही हो।

आज इस १२६ वें जन्म जयन्ती वर्ष पर मैं उन्हें अपनी श्रद्धाञ्जलि व्यक्त करता हूँ तथा और भी संस्मरण है जिन्हें फिर कभी लिखूँगा।

वैदिक पुस्तकालय अजमेर
द्वारा प्रकाशित नये संस्करण

ईश्वर (वैज्ञानिकों की दृष्टि में), प्रस्तुतकर्ता एवं अनुवादक - पं. क्षितीश कुमार वेदालङ्कार

मूल्य -१५० रु., **पृष्ठ** - २६४

दुनिया में दो तरह के मनुष्य पाये जाते हैं, एक वो जो भगवान् को अर्थात् उसके अस्तित्व को स्वीकार करते हैं और दूसरे वे जो भगवान् जैसी किसी सत्ता पर भरोसा नहीं करते। पहले को आस्तिक और दूसरे को नास्तिक कहा जाता है। नास्तिकों के अपने तर्क हैं और इन तर्कों में वे प्राय: वैज्ञानिक प्रयोगों, आविष्कारों, विज्ञान की प्रगति की दलीलों का ही हवाला देते हैं। विज्ञान है तो बहुत अच्छी चीज़, पर अगर कहीं किसी वैज्ञानिक की चूक से कुछ गलत निष्कर्ष आ जाये तो उसे आंखें बन्द करके मान लिया जाता है। आखिर वैज्ञानिक भी तो मनुष्य ही है, गलती तो वह भी करता ही है। इस तरह एक नये प्रकार का अन्धविश्वास 'वैज्ञानिक अन्धविश्वास' जन्म लेता है और दो अन्धविश्वास आपस में टकरा जाते हैं। जो भगवान् को नहीं मानता, वह भी सोचना नहीं चाहता, केवल दूसरों के भरोसे चलता है और जो मानता है, उसने भी अपना दिमाग बाबाओं के पल्ले बाँध रखा है। इन दोनों से अलग कुछ ऐसे भी होते हैं जो अपने मस्तिष्क को थोड़ा मेहनत करने देते हैं और सत्य तक पहुँचने का प्रयास करते हैं। ऐसे ही कुछ वैज्ञानिकों के विचारों को इस पुस्तक में संकलित किया गया है। जरूरी नहीं कि ये सभी वैज्ञानिक भगवान् को स्वीकार करते ही हों, पर वह इतना तो स्वीकार करते ही हैं कि कुछ तो है जो विज्ञान की पकड़ से बाहर है। उनकी इसी 'ना' में शायद 'हाँ' छिपी है, बस अन्तर इतना ही है कि उनकी वह खोज बिना नाम वाली है और वेद ने उसको नाम दे दिया है- 'ईश्वर'।

त्रैतवाद- लेखक-विद्यामार्तण्ड पंडित बुद्धदेव विद्यालङ्कार

मूल्य-२० रु., **पृष्ठ** -४०

परिचय- पं. बुद्धदेव जी एक बार अपने आर्य मित्र के पास मिलने गये। उन्होंने देखा कि मित्र का बड़ा बेटा कम्युनिस्ट विचारधारा से बहुत अधिक प्रभावित है। कारण यह कि वह देश-विदेश में घूमकर आया है और किताबें भी कम्युनिज़्म की ही पढ़ता है। पंडित जी ने वह पुस्तक मांगी, जिससे कम्युनिज़म का सबसे अधिक प्रभाव पड़ा था। उस पुस्तक का नाम था The Origin of life on the Earth, जिसका विषय था, 'पृथ्वी पर पहली बार जीवन कैसे आया?' बुद्धदेव जी ने इस पुस्तक को आद्योपान्त पढ़कर इसकी समीक्षा की और उस समीक्षा की एक पुस्तक बन गई- त्रैतवाद।

आख्यातिक- लेखक- महर्षि दयानन्द सरस्वती

मूल्य- २५० रु. , **पृष्ठ** - ६०८

परिचय- महर्षि दयानन्द सरस्वती आर्ष ग्रन्थों के अध्ययन पर बहुत बल देते थे। विशेषकर व्याकरण पर, जो कि सब शास्त्रों की कुंजी है। संस्कृत व्याकरण को सरल एवं सुगम बनाने के लिये उन्होंने पाणिनीय व्याकरण के सहायक ग्रन्थों के रूप में 'वेदांग प्रकाश' नाम से १४ पुस्तकें लिखीं। उनमें से आठवाँ भाग यह 'आख्यातिक' है। इसमें मूलत: धातु पाठ की व्याख्या है। साथ ही उन धातुओं के रूप निर्माण की प्रक्रिया को भी समझाया गया है।

वैदिक पुस्तकालय, अजमेर से क्रय की जाने वाली पुस्तकों की राशि ऑनलाइन जमा कराने हेतु

खाता धारक का नाम - **वैदिक पुस्तकालय, अजमेर।**

बैंक का नाम - **पंजाब नेशनल बैंक, कचहरी रोड, अजमेर।**

बैंक बचत खाता **(Savings)** संख्या - **0008000100067176**

IFSC - PUNB0000800

शङ्का समाधान - ३५

डॉ. वेदपाल, मेरठ

शङ्का- १. प्राय: यज्ञ में पत्नी पति के दायीं तरफ बैठती है, पर कुछ संस्कारों में पत्नी को बायीं तरफ बिठाया जाता है, क्यों?

२. संस्कार विधि के अनुसार प्राय: संस्कारों को करने के लिए कोई एक निश्चित समय (आयु-वर्ष) निर्धारित नहीं है। कई-कई विकल्प दिए हैं। ऐसा क्यों?

-रमेशचन्द वैदिक पुरोहित, नसीरपुर, द्वारिका, दिल्ली-४४

समाधान- १. यज्ञ एवं संस्कार दोनों कृत्यों में यजमान का प्रवृत्ति निमित्त समान नहीं होता। यद्यपि प्राय: संस्कारों के समय यज्ञ का आयोजन किया जाता है, काम्य यज्ञों को छोड़कर यज्ञ धार्मिक कृत्य है। जबकि संस्कार का प्रयोजन सुसंस्कृत, सभ्य मानव का निर्माण है। महर्षि दयानन्द ने संस्कारों से संस्कृत आत्मा एवं शरीर को मेध्य तथा असंस्कृत को अमेध्य कहा है-

वेदादि शास्त्रसिद्धान्तमाध्याय परमादरात्।
आर्यैतिह्यं पुरस्कृत्य शरीरात्मविशुद्धये।।
संस्कारैस्संस्कृतं यद्यन्मेध्यमत्र तदुच्यते।
असंस्कृतं तु यल्लोके तदमेध्यं प्रकीर्त्यते।।

संस्कारविधि

यज्ञ में बैठते समय पति का स्थान बाएं तथा पत्नी का स्थान दाईं ओर है। विवाह संस्कार का प्रमुख प्रयोजन धर्म है। विवाह संस्कार के समय पाणिग्रहण का द्वितीय मन्त्र इसका ज्ञापक है-

ओं भगस्ते हस्तमग्रभीत् सविता हस्तमग्रभीत्।
पत्नी त्वमसि धर्मणाहं गृहपतिस्तव।।

-अथर्व. १४.१.५१

विवाह के अतिरिक्त गर्भाधान, नामकरण एवं निष्क्रमण काम्य तथा नैमित्तिक हैं। इस निमित्त होने वाले यज्ञ में पत्नी का स्थान पति के दाएं न होकर उसके बाईं ओर है। इस विषय में शास्त्रीय एवं महर्षि दयानन्द का पक्ष निम्नवत् है-

क- दर्शपौर्णमास सभी इष्टियों की प्रकृति हैं। इसमें निर्दिष्ट विधि सभी विकृति में प्रवृत्त होती है। इसमें पत्नी के बैठने का स्थान निर्ऋति कोण कहा है। तद्यथा-

पत्नीᳪसन्नह्यति प्रत्यग्दक्षिणत उपविष्टां गार्हपत्यस्य,
मुञ्जयोक्त्रेण त्रिवृता, परिहरत्यधीवासो
''ऽदित्यैरास्ने''ति

-का. श्रौ. सू. २.७.१

ख- कात्यायन श्रौतसूत्र में ही अग्निहोत्र प्रकरण में सायं अग्निहोत्र प्रसंग में यजमान के स्थान का निर्देश निम्नवत् है-

अन्तरेणापराग्नी गत्त्वा दक्षिणेन
वाऽप्रदक्षिणमाहवनीयं परीत्योपविशति यजमानः।।
पत्नी च पूर्ववत्- का. श्रौ. सू. ४.१३.१२-१३

ग- प्रात: अग्निहोत्र के समय यजमान दम्पती-

अन्तरेणाऽपराग्नी गत्त्वा दक्षिणेन वा प्रदक्षिणं
गार्हपत्यं गत्वोपविशति यजमानः।।
पत्नी च यथादेशम्- का. श्रौ. सू. ४.१४.२-३

उपर्युद्धृत ख तथा ग में क्रमश: 'पूर्ववत्' तथा 'यथादेशम्' पद दर्शपौर्णमास में निर्दिष्ट स्थान निर्ऋतिकोण-यजमान के दायीं ओर के परामर्शक हैं। कात्यायन श्रौत के प्रसिद्ध भाष्यकार विद्याधर ने इसे इसी प्रकार स्पष्ट किया है- ''**पत्नी च गार्हपत्यस्य प्रत्यादक्षिणतो** (२.७.१) **दर्शपौणमासवदुपविशेत्।**''

विवाह संस्कार में पत्नी का स्थान- विवाह संस्कार के समय पत्नी का स्थान गृह्यसूत्रकार पति के दाएँ ओर निर्दिष्ट करते हैं। तद्यथा-

क- 'पूर्वे कटान्ते दक्षिणतः पाणिग्राहस्योपविशति'

- गोभिल गृ. सू. २.१.२३

'परिणीता तथैवावतिष्ठते तथाऽऽक्रामति तथा जपति
तथाऽऽवपति तथा जुहोत्येवं त्रिः'

- वही २.२.९-१०

ख- 'पाणिग्राहस्य दक्षिणत उपवेशयेत्'

- खादिर गृ. सू. १.३.७

ग- 'अथैनामुत्तरया दक्षिणे हस्ते

गृहीत्वाऽग्निमभ्यानीयअपरेणाग्निमुदगग्रं कटमास्तीर्य तस्मिन्नुपविशत उत्तरोवरः'

– आपस्तम्ब गृ. सू. २.४.९

घ– 'दक्षिणतः पतिं भार्योपविशति'

– हिरण्यकेशी गृ. सू. १.३.२

ङ– 'अपरेणाग्निमुदीचीन प्रतिषेवणामेरकां साधिवासाम् आस्तीर्य तस्यां प्राञ्चावुपविशत उत्तरतः पतिर्दक्षिणा पत्नी'

–**बौधायन** गृ. सू. १.३.२०

पारस्कर गृह्यसूत्र ने स्थान विशेष का उल्लेख नहीं किया है, किन्तु भाष्यकार हरिहर, गदाधर और विश्वनाथ ने वर के दाहिनी ओर कन्या के बैठने का वर्णन किया है। केवल काठक गृह्यसूत्र में वर का स्थान दाहिनी ओर माना है– **'दक्षिणतः पुमान् भवति'** – २५.१०

च– महर्षि दयानन्द सरस्वती ने विवाह संस्कार में वधू का स्थान वर के दाहिनी ओर कहा है। तद्यथा–

''इन चार मन्त्रों (**समञ्जन्तुविश्वे..., यदैषि मनसा..., भूर्भुवः स्वः। अघोरचक्षुः...; भूर्भुवः स्वः। सा न पूषा...**) को वर बोल के दोनों वर–वधू यज्ञकुण्ड की प्रदक्षिणा करके कुण्ड के पश्चिम भाग में प्रथम स्थापन किए हुए आसन पर **पूर्वाभिमुख वर के दक्षिण भाग में वधू और वधू के वाम भाग में वर बैठ के...**'' –द्र. संस्कारविधि पृ. १२९, प्रकाशक– दयानन्द संस्थान दिल्ली, संस्करण संवत् २०३२ वि.। इसी संस्करण के पृष्ठ १३९, १४० तथा १४४ भी द्रष्टव्य हैं।

लघ्वाश्वलायन, वशिष्ठ तथा व्याघ्रपाद आदि स्मृति ग्रन्थों में भी पत्नी/वधू का स्थान दायीं ओर ही कहा है।

पति की बायीं ओर– गर्भाधान से पूर्व क्रियमाण काम्य यज्ञ के समय पत्नी का स्थान पति के बायीं ओर है। तद्यथा–

''...यहाँ पत्नी पति के वाम भाग में बैठे...''

–द्र. संस्कारविधि पृ. ५६ तथा ५९

गोभिल गृह्यसूत्र ने भी निष्क्रमण (२.८.४) तथा नामकरण (२.८.१२) के अवसर पर पत्नी का स्थान बायीं ओर माना है।

इस प्रकार धर्मकृत्य में पत्नी का स्थान दायीं ओर तथा काम्य एवं नैमित्तिक होने पर पति के बायीं ओर शास्त्र एवं महर्षि सम्मत है।

२. संस्कार में काल–विकल्प– महर्षि दयानन्द सरस्वती ने संस्कारविधि में १. चूड़ाकर्म २. कर्णवेध तथा ३. उपनयन में संस्कार काल का विकल्प रखा है। महर्षि कृत संस्कार विधि के उपजीव्य गृह्यसूत्र हैं। गृह्यसूत्रकार काल विकल्प प्रतिपादित करते हैं।

काल विकल्प के सन्दर्भ में यह ध्यान रखना आवश्यक है कि किसी संस्कार का किया जाना दो पर निर्भर करता है। प्रथम– वह शिशु–बालक तथा द्वितीय उसके माता–पिता। उक्त दोनों में यदि कोई भी प्रथम काल पर समर्थ नहीं है, तब वह वैकल्पिक काल पर उसे सम्पन्न कर लें। जैसे– चूड़ाकर्म के प्रथम समय

'सांवत्सरिकस्य चूडाकरणम्'

– पारस्कर गृ. सू. २.१.१

बालक के एक वर्ष का होने पर चूड़ाकर्म संस्कार हो। यदि किसी कारणवश बालक अस्वस्थ हो अथवा परिवार में कोई कठिनाई हो जिसके कारण नियत समय पर संस्कार सम्भव न हो तो क्या संस्कार किया ही न जाए? नहीं, ऐसी स्थिति में सूत्रकार ने विकल्प प्रस्तुत किया है कि–

'तृतीये वाऽप्रतिहते'– पारस्कर गृ. सू. २.१.२

असम्पूर्ण तीसरे वर्ष में अर्थात् तीसरे वर्ष में सुविधानुसार कभी भी चूड़ाकर्म किया जा सकता है।

इसी प्रकार उपनयन का काल विकास समझना चाहिए। जैसे माता–पिता अपनी सन्तान को ब्रह्मवर्चस्, आयुष जिस से युक्त चाहते हैं, तदनुरूप काल विधान है। साथ ही एक ऊपरी सीमा भी है कि तब तक अवश्य ही उपनयन होना चाहिए। इस विषय गृह्यसूत्रों के वैकल्पिक काल पूर्णतः युक्तियुक्त हैं। किसी एक काल की बाध्यता रूढ़ि की ही जनक होगी। विकल्प व्यक्ति की सामर्थ्य–साधन आदि की दृष्टि से पूर्णरूपेण व्यावहारिक पक्ष है। समाधान में सभी प्रमाण उद्धृत् करना स्थान की दृष्टि से सम्भव नहीं है।

२८ अक्टूबर जिनकी पुण्यतिथि है...

मधुरभाषी पं. बुद्धदेव जी मीरपुरी

राजेन्द्र 'जिज्ञासु'

कभी श्री स्वामी जगदीश्वरानन्द जी ने इस लेखक से पं. बुद्धदेव जी मीरपुरी पर एक खोजपूर्ण लेख लिखवाया था। वह कहाँ छपा? यह तो अब ज्ञात नहीं। आर्यसमाज के प्राणवीर कर्मवीर साधु-संन्यासियों, हुतात्माओं, शास्त्रार्थ-महारथियों व समर्पित साहित्यकारों पर लिखना मेरी दुर्बलता रही है।

श्री पं. बुद्धदेव मीरपुरी की आर्यसमाज में चर्चा तो अब भी होती रहती है, परन्तु मेरे लिखने व बताने पर कभी कोई आर्यसमाजी यह नहीं कहता कि उनका जन्म अबोहर क्षेत्र का था। वे अबोहर से हनुमानगढ़ जाने वाली सड़क पर रामसरा नाम के एक बड़े ग्राम से कोई दो-तीन मील की दूरी पर रामपुरा एक छोटे से ग्राम में एक ब्राह्मण कुल में जन्मे। मैंने उस ग्राम के कुछ लोगों को बताया था कि कभी यहाँ एक प्रकाण्ड विद्वान् का जन्म हुआ था।

उनका कुटुम्ब घोर पौराणिक था। एक छोटे चाचा आर्यसमाजी विचारों के लगनशील ऋषि-भक्त थे। उनकी उत्कट इच्छा थी कि मेरा मेधावी भतीजा यह बुद्धदेव आर्यसमाजी बन जावे। उनसे बुद्धदेव का प्रायः वाद-विवाद होता रहता था। चाचा की युक्तियाँ भतीजे के हृदय में घुसती गईं और वह आर्यसमाज का प्रकाण्ड पण्डित बन गया। काशी, मथुरा व अमृतसर में संस्कृत व्याकरण आदि का गम्भीर अध्ययन किया। आपकी स्मरण-शक्ति बहुत विलक्षण थी। पहले तो आर्यसमाज में सदा ५-७ विद्वान् साधु, सुवक्ता असाधारण स्मरण-शक्ति वाले रहे हैं यथा पं. लेखराम जी, मेहता जैमिनि जी, स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी, आचार्य रामदेव जी, स्वामी वेदानन्द आदि। पं. बुद्धदेव जी मीरपुरी की स्मरण शक्ति देखकर अपने बेगाने सब दंग रह जाते थे। मैं शब्दों में उनकी चमत्कारी स्मरण-शक्ति का वर्णन कैसे करूँ?

वे शास्त्रार्थों में तथा अपनी लम्बी-लम्बी कथाओं में बिना पुस्तक देखे प्रमाणों की वर्षा करते जाते थे। उनके दिये प्रमाण को कभी कोई प्रतिपक्षी झुठला न सका। यह सन् १९६२ की घटना है। वे धुरी (पंजाब) कथा के लिये आमन्त्रित किये गये। उनकी रामायण की कथा की धूम बिना मुनादी के एक ही दिन में पूरी धुरी मण्डी में मच गई। सभा में तिल धरने को स्थान नहीं बचा था। वह कथा भी विचित्र शैली से करते थे। वह पहले वेद के दो-चार मन्त्रों का मधुर गान किया करते थे फिर उसी आशय के रामचरित मानस से पद्य अपनी रसभरी वाणी से सुनाकर कुछ व्याख्या करते और साथ में वाल्मीकि रामायण के श्लोक सुनाकर वेद-मन्त्र के भावों की पुष्टि करके महाराज रामचन्द्र जी का यशोगान करते। पौराणिक श्रोता नित्य यही कहते सुने गये, ''हमने रामायण की ऐसी रसभरी और विद्वत्तापूर्ण कथा आज तक नहीं सुनी। देखो जी यह आर्यसमाजी प्रकाण्ड पण्डित पुस्तक तो खोलता ही नहीं। इसे सब कुछ कण्ठाग्र है। न ही कथा में चढ़ावा चढ़ाने का कोई संकेत करता है।''

धुरी मण्डी की उस कथा की याद आने पर पण्डित जी के एक नियम को बताने का लोभ संवरण नहीं किया जा सकता।

धुरी का आर्यसमाज मन्दिर स्टेशन के अति निकट है। बस पाँच मिनट की दूरी समझें। उनके चलने का समय हुआ तो गाड़ी आने से एक घण्टा पहले स्टेशन पर चलने का हठ करके चलने को कहा। हम लोगों ने बहुत कहा कि यह तो पास स्टेशन है। आपका टिकट ले रखा है। एक घण्टा पहले जाकर क्या करेंगे? न जाने कहीं क्या घटना घट गई कि वे अपनी गाड़ी के आने से एक घण्टा पहले अपना सामान उठाकर चल देते थे।

स्वामी जगदीश्वरानन्द जी ने उनके कई प्रसिद्ध शास्त्रार्थों व प्रचार की घटनायें 'मीरपुरी सर्वस्व' में दी हैं। वहाँ एक-दो घटनायें उनको किसी ने ठीक-ठीक नहीं सुनाईं। शोलापुर के आर्य सत्याग्रह में जाने वाले बुद्धदेव पहले पंजाबी आर्य सत्याग्रही नहीं थे। सत्याग्रह के

फ़ील्डमार्शल स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी व उनके साथ पं. ज्ञानचन्द जी आर्य सेवक आदि भी तो सत्याग्रह छिड़ने से पहले वहाँ पंजाब से ही तो गये थे और उनसे भी पहले सत्याग्रह के लिये मैदान तैयार करने पंजाब से जो दिलजला आर्य वीर सबसे पहले शोलापुर पहुँचा, वह पं. बुद्धदेव जी मीरपुरी के शास्त्रार्थों के सहयोगी, यशस्वी-तपस्वी विद्वान् बहुभाषविद् पं. त्रिलोकचन्द्र शास्त्री जी थे। घर से सहस्रों मील दूर सिर पर कफ़न बाँधे वे हैदराबाद की आगे में श्री डॉ. धर्मवीर आर्य जी के एक नाना, शूर शिरोमणि भाई की पारखी दृष्टि में ऐसी समायी कि बिन सोचे सबसे पहले उस आग में कूद पड़े। तब तक वह आर्य महासम्मेलन भी नहीं हुआ था जिसमें सत्याग्रह की घोषणा की गई। उन्हें सत्याग्रह की विजय तक आर्यसमाज के कर्णधारों ने जेल जाने की अनुमति नहीं दी, जैसे जेल जाने से पूर्व महात्मा नारायण स्वामी जी महाराज अपनी वसीयत (will) में यह लिख गये कि किसी भी स्थिति में-मेरी मृत्यु हो जाने पर भी- स्वामी स्वतन्त्रानन्द सत्याग्रह नहीं कर सकेंगे। यह प्रसंग देने का मेरा प्रयोजन यह भ्रम भञ्जन करना है कि पं. बुद्धदेव जी मीरपुरी शोलापुर पहुँचने वाले पंजाब के पहले सत्याग्रही थे।

उधर प्रचार करते हुये पं. बुद्धदेव जी प्रादेशिक सभा के प्रधान और सत्याग्रह के तीसरे सर्वाधिकारी महाशय ख़ुशहालचन्द जी से मिलने गुलबर्गा जेल पहुँच गये। कुछ बातें हुई फिर विदा लेते हुये पण्डित जी ने अपने नेता से पूछा, मेरे लिये कोई आज्ञा?

ख़ुशहालचन्द जी ने अपनी चिरपरिचत शैली में ये पंक्तियाँ बुद्धदेव जी को सुना दीं-

खेतों को दे लो पानी अब बह रही है गंगा,
कुछ कर लो नौजवानो उठती जवानियाँ हैं।

यह प्रसंग महात्मा आनन्द स्वामी जी की उर्दू पुस्तक 'जेल की कहानी में' लेखक ने शोलापुर में ही पढ़ा था। इस पद्य को सुनकर बुद्धदेव जी भी सत्याग्रह करने पर अड़ गये। यह कैसा भावपूर्ण सन्देश था।

हमने लेख के आरम्भ में पं. बुद्धदेव जी की विलक्षण स्मरण-शक्ति का उल्लेख किया है। लेख की समाप्ति पर इसी से सम्बन्धित एक घटना देकर लेखनी को विराम देते हैं। एक शास्त्रार्थ में एक प्रतिपक्ष पौराणिक पण्डित से आपने अठारह पुराणों व १८ उप पुराणों के नाम बताने को कहा। वह क्रम से अथवा बिना क्रम के भी अठारह पुराणों के नाम न गिना सका। वह पुराणों के नाम बताता बताता बीच में उप पुराणों के नाम भी गिना देता।

पं. बुद्धदेव जी ने भरी सभा में उसे ललकारते हुये कहा, ''सुन अब मैं तुम्हारे अठारह पुराणों व उप पुराणों के नाम सुनाता हूँ। नोट करते जाओ और कोई चूक हो तो आप (प्रतिपक्षी पण्डित) या कोई पौराणिक उसी समय संकेत करके मेरी भूल का सुधार कर दे। पण्डित जी ने शास्त्रार्थ स्थल में एक क्षण की भी देर न लगाई और सहज भाव से सब पुराणों के व उप पुराणों के नाम सुना दिये। सब श्रोता व गुणी विद्वान् उनके आत्मविश्वास तथा असाधारण स्मरण-शक्ति का यह चमत्कार देखकर गदगद हो गये।''

आर्यसमाज में संस्मरण लिखने की साहित्यिक परम्परा होती तो पण्डित बुद्धदेव जी के अमूल्य, शिक्षाप्रद व प्रेरक संस्मरण इतिहास की अद्भुत सम्पदा होते।

अतिथि-यज्ञ के होताओं से अनुरोध

अतिथि-यज्ञ के होताओं से उनकी वैवाहिक वर्षगाँठ अथवा जन्मदिन व विभिन्न अवसरों पर ५१०० रु. प्रतिवर्ष सभा को प्राप्त होते रहते हैं। जो महानुभाव संकल्प के साथ इस पुनीत कार्य से जुड़े हुए हैं, उनसे हमारा अनुरोध है कि वे अपनी राशि भेजते समय **जन्मतिथि/वैवाहिक वर्षगाँठ आदि व दूरभाष संख्या** सूचित करना न भूलें। साथ ही यह भी अवश्य सूचित करा देवें कि पहले से भिजवा रहे हैं अथवा नया शुरू किया है। आप अपनी राशि सभा के बैंक खाते में नकद अथवा चैक द्वारा जमा करा सकते हैं।

पाठकों के विचार

माननीय सम्पादक जी!

दो माह पूर्व मैं आर्य लेखक परिषद् बैठक में भाग लेने के लिए दिल्ली गया था। उस बैठक में भोपाल से आदित्य मुनि वानप्रस्थ भी आये थे। वे अपने साथ 'आर्यसमाज के संस्थापक स्वामी दयानन्द सरस्वती जी की वास्तविक जन्म तिथि' शीर्षक वाली पुस्तक की कई प्रतियाँ लेखकों में वितरण करने हेतु लाये थे।

पुस्तक के अन्तिम पृष्ठ पर छपा है 'ओ३म्' हो गया। हो गया। हो गया। महर्षि दयानन्द की जन्मतिथि का यथातथ्य सत्यनिर्धारण।'

मैंने उनसे कहा कि स्वामी जी की जन्मतिथि १२ फरवरी १८२५ ई. है, ऐसा निर्णय सार्वदेशिक आर्य महासभा अपनी बैठक २९ अप्रैल १९५६ को ही स्वीकार कर चुकी है। अब आप इस मामले को व्यर्थ क्यों उठाते हो, तो उन्होंने चुप्पी साध ली।

उनके अनुसार महर्षि की जो जन्मकुण्डली उनके पारिवारिक जनों से मिली है, उसके अनुसार महर्षि की जन्मतिथि भाद्रपद शुक्ल नवमी ही है। तदनुसार उनकी जन्मतिथि १९ सितम्बर १९२५ ही है।

वास्तव में यह सम्पूर्ण विवरण असत्य है। ऋषि के परिवार में उनकी छोटी बहिन प्रेम बा के अतिरिक्त दूसरा कोई रिश्तेदार नहीं था। फिर विवाह होने पर वह अपने ससुराल चली गई। जाते समय अपने भाई की जन्म-कुण्डली तो लेकर गई नहीं होगी। कोई भी बहिन अपने ससुराल जाते समय भाई की जन्मपत्री साथ नहीं ले जाती है। माता-पिता की मृत्यु के उपरान्त जब वह अपने पैतृक घर में आई तब भी भाई की जन्मकुण्डली की वह तलाश क्यों करती? उसके बाद उसके पौत्र पोपटलाल ने स्वामी जी के विषय में अपनी दादी से कुछ सुना वह उसने वर्णन कर दिया। यदि इस समय तक भी उनकी कुण्डली होती तो उसका कागज नष्ट हो गया होगा। सामान्यतया कागज पर लिखा हुआ विवरण ५० वर्ष बाद पढ़ने योग्य नहीं रहता और इधर तो सौ वर्ष व्यतीत हो गये थे।

असत्य वस्तुओं के मूल में जो असत्य होता है वह शीघ्र ही प्रकट हो जाता है। इस जन्मकुण्डली का असत्य इस प्रकार व्यक्त हुआ है। स्वामी जी ने अपना जन्म वर्ष १८८१ वि. बताया है।

आदित्य मुनि का कहना है कि गुजरात का विक्रम संवत् कार्तिक मास में प्रारम्भ हो जाता है जबकि उत्तर भारत में यह चैत्र शुक्ला प्रतिपदा को प्रारम्भ होता है, मैं भी इसका समर्थन करता हूँ। इससे गुजराती संवत् कार्तिक मास में ही १८८२ में लग जाता है जबकि उत्तर भारत में चैत्री विक्रम संवत् चैत्र शुक्ला प्रतिपदा को १८८२ में प्रवेश करेगा। इसका अर्थ यह हुआ कि कार्तिक मास से चैत्र शुक्ला प्रतिपदा तक गुजराती संवत् तो १८८२ रहा, परन्तु विक्रम संवत् १८८१ ही रहा। शेष समय अर्थात् चैत्र शुक्ला प्रतिपदा से कार्तिक मास तक तो दोनों संवत् १८८१ ही बतावेंगे। इस समय विक्रम संवत् और ईस्वी सन् में ५७ वर्ष का अन्तर रहेगा। अर्थात् भाद्रपद शुक्ल नवमी १८८१ विक्रम संवत् है तो ईस्वी सन् १८८१-५७=१८२४ होगा। जबकि लेखक ने माना है कि स्वामी दयानन्द का जन्म भाद्रपद शुक्ल ९ संवत् १८८१ (गुजराती) को हुआ। इस दिन तो चैत्री संवत् भी १८८१ ही होगा। संवत् का परिवर्तन तो कार्त्तिक मास में होगा। फिर लेखक कहता है कि यह तिथि ईस्वी सन् में २० सितम्बर १८२५ है, जो नितान्त असत्य है। भाद्रपद शुक्ल ९ संवत् १८८१ (गुजराती) में भी ईस्वी सन् १८२४ ही होगा। फिर आपकी यह जन्मकुण्डली जो २० सितम्बर १८२५ मानकर बनाई गई है, कैसे सत्य हो सकती है। २० सितम्बर १८२५ में गुजराती संवत् १८८२ होगा १८८१ नहीं होगा। फिर स्वामी जी ने अपना जन्म वर्ष १८८१ वि. (गुजराती) बताया है जो ईस्वी सन् १८२४ होता है। हाँ, यदि स्वामी जी का जन्म फाल्गुन शुक्ला को हुआ है तो जन्मतिथि १२ फरवरी १८२५ होगी। सार्वदेशिक सभा ने सब तरह से विचार करके ही इस तिथि को स्वीकार किया है।

शिवनारायण उपाध्याय

७३, शास्त्रीनगर, दादाबाड़ी, कोटा (राज.)

पाठकों की प्रतिक्रिया

सम्पादक जी, सादर नमस्ते।

आपका सम्पादकीय जुलाई (प्रथम) पढ़ा और मैं हिन्दू क्यों हूँ पर विश्लेषण सटीक लगा। भारतवर्ष में हिन्दू नाम का कोई धर्म नहीं था। आर्यावर्त्त में केवल वैदिक धर्म ही है, शेष सभी सम्प्रदाय हैं। मुझे आश्चर्य होता है कट्टरपन्थी सनातनी जो राम, कृष्ण को ईश्वर मानते और उनकी उपासना करते हैं और गर्व से कहते हैं कि मैं हिन्दू हूँ, जबकि राम, कृष्ण पक्के वेद के अनुयायी थे और उनके आदर्श भी वैदिक थे। हिन्दू शब्द तो मुस्लिम आक्रमणकारियों के आने के बाद प्रचलित हुआ है।

भारतीय जनतापार्टी की विचारधारा भी सनातनी ही है जिसमें आर्यसमाजियों की स्वीकार्य माँगों अथवा विचारों की अनदेखी की जाती है और पक्षपात किया जाता है। जैसे-

१. राजस्थान सरकार ने पहले २५ महापुरुषों की जीवनियाँ अपने पाठ्यक्रम में रखी हैं जिसमें आर्यसमाज के एक भी देशभक्त, धर्मनायक को स्थान नहीं दिया गया जबकि भारत में और राजस्थान में भी ऐसे आर्य महापुरुष हुए हैं जिन्होंने अपना जीवन देश और धर्म के लिए आहूत कर दिया।

२. डार्विन थ्योरी ऑफ एवोल्यूशन को पार्लियामेन्ट में केन्द्रीय राज्य मन्त्री श्री सत्यपाल सिंह जी द्वारा स्वीकार्य न मानने और वैदिक मान्यता कि ईश्वर ने सभी प्राणी एक साथ बनाए थे पर एक वरिष्ठ मन्त्री ने रोका और टोका-टाकी की व अन्य मेम्बरों द्वारा भी दुर्व्यवहार किया गया।

३. आदरणीय सत्यपाल सिंह जी के अथक प्रयास पर हिन्दू विश्वविद्यालय बनारस में मॉडर्न फिजिक्स और वैदिक फिजिक्स पर संगोष्ठी आयोजित की गई जिसमें जब आचार्य अग्निव्रत जी के बोलने की बारी आई तो गोष्ठी के अध्यक्ष स्वयं गोष्ठी से चले गये कि बिना गणित की बात उनको स्वीकार नहीं है, जबकि भारतीय युवा वैज्ञानिकों ने आचार्य जी को सुना और प्रशंसा की।

यदि इसी प्रकार वैदिक सिद्धान्तों की अनदेखी होती रही तो अपनी उचित बात मनवाने के लिए वैदिकधर्मियों को आर्यसमाज में राजनीतिक शाखा स्थापित करनी पड़ेगी, जिससे हिन्दू एकता की हानि होगी। मुस्लिम तुष्टिकरण के कारण स्वामी श्रद्धानन्द जी जैसे देशभक्तों ने कांग्रेस को त्यागा और भारत की वर्तमान अनिश्चित दशा देखनी पड़ी। यदि उस समय आर्यसमाज ने राजनीति भी अपनाई होती तो आज भारत विश्व का सरताज होता। ईश्वर राजनेताओं को सद्बुद्धि दे और भेदभाव समाप्त हो जाए और स्वामी दयानन्द जी की इच्छा पूर्ण हो जाये।

डॉ. कृष्णलाल डंग, ३९/३ प्रेमविहार, पांवटा साहिब, सिरमौर (हि.प्र.)

माता का कर्त्तव्य

बालकों को माता सदा उत्तम शिक्षा करें, जिससे सन्तान सभ्य हों और किसी अंग से कुचेष्टा न करने पावें। जब बोलने लगें तब उसकी माता बालक की जिह्वा जिस प्रकार कोमल होकर स्पष्ट उच्चारण कर सके वैसा उपाय करें कि जो जिस वर्ण का स्थान-प्रयत्न अर्थात् जैसे 'प' इसका ओष्ठ स्थान और स्पृष्ट प्रयत्न दोनों ओष्ठों को मिलाकर बोलना, ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत अक्षरों को ठीक-ठीक बोल सकना। मधुर, गम्भीर, सुन्दर, स्वर, अक्षर, मात्रा, पद वाक्य, संहिता, अवसान भिन्न-भिन्न श्रवण होवे। जब वह कुछ-कुछ बोलने ओर समझने लगे तब सुन्दर वाणी और बड़े छोटे, मान्य, पिता, माता, राजा, विद्वान् आदि से भाषण, उनसे वर्त्तमान और उनके पास बैठने आदि की शिक्षा करें, जिससे कहीं उनका अयोग्य व्यवहार न होके सर्वत्र प्रतिष्ठा हुआ करे। जैसे सन्तान जितेन्द्रिय, विद्याप्रिय और सत्संग में रुचि करे वैसे प्रयत्न करते रहें। व्यर्थ क्रीड़ा, रोदन, हास्य, लड़ाई, हर्ष, शोक, किसी पदार्थ में लोलुपता, ईर्ष्या, द्वेषादि न करें। उपस्थेन्द्रिय के स्पर्श और मर्दन से वीर्य की क्षीणता, नपुंसकता होती और हस्त में दुर्गन्ध भी होता है, इससे उसका स्पर्श न करें।

(स.प्र.द्वि.स.)

आर्यों के लिये शुभ सूचना

'कुल्लियाते आर्यमुसाफ़िर' छपने के लिये तैयार

कुछ समय पूर्व 'परोपकारी' में सूचना प्रकाशित हुई थी कि पं. लेखराम आर्य मुसाफ़िर के साहित्य 'कुल्लियाते आर्य मुसाफ़िर' को परोपकारिणी सभा प्रकाशित करने जा रही है। इस सूचना को पढ़कर आर्यजगत् में उत्साह का संचार होना स्वाभाविक ही था, जिसके परिणामस्वरूप इस ग्रन्थ को छापने के लिये कई साहित्यप्रेमियों ने सभा को सहयोग भी किया, परन्तु पंडित लेखराम जैसे नाम पर यह सहयोग पर्याप्त मालूम नहीं हुआ। पंडित लेखराम वह नाम है जिसके वैदिक-ज्ञान के सामने विरोधी काँपते थे। ऐसे सिद्धान्तमर्मज्ञ ने अपनी संचित ज्ञान-राशि को लेखबद्ध किया और इस लेखबद्ध ज्ञानराशि को यति शिरोमणि स्वामी श्रद्धानन्द जी ने एकत्रित किया और एक ग्रन्थ निर्मित हुआ, जिसका नाम था 'कुल्लियाते आर्यमुसाफ़िर'। यह ग्रन्थ दो भागों में प्रकाशित हुआ। वर्त्तमान में यह ग्रन्थ दुर्लभ हो गया था। परोपकारिणी सभा ने इसे पुनः प्रकाशित करने का निर्णय लेकर पं. लेखराम को पुनर्जीवित कर दिया है। हमने लेखराम का गुणगान ही सुना है, उनके जीवन को ही पढ़ा है, पर वह इस उच्च पदवी को कैसे पा गये- इसकी सच्ची खबर तो उनके लिखे पन्ने ही बता सकते हैं। इन पन्नों को किताब रूप में छापने के लिये जैसा उत्साह, जैसी उमंग दिखनी चाहिये थी, उसमें अभी न्यूनता ही नज़र आती है।

अब यह ग्रन्थ छपने के लिये प्रेस में भेजा जा रहा है। अच्छे कार्यों का सदैव प्रोत्साहन होना चाहिये, इस दृष्टि से इस पुस्तक में **११०००/-रु.** का सहयोग करने वालों के नाम प्रकाशित किये जायेंगे। **एक लाख रु.** से अधिक का सहयोग करने वालों का चित्र सहित आभार व्यक्त किया जायेगा।

आइये, महर्षि दयानन्द के मिशन के लिये अपना जीवन देने वाले आर्यपथिक पं. लेखराम को केवल शब्दों से याद न करके उन्हें पुनर्जीवित करने में भरपूर उत्साह से सहयोग करें।

ओम्मुनि, मन्त्री, परोपकारिणी सभा

परोपकारी के पाठकों से निवेदन

प्रिय पाठकगण, सादर नमस्ते!

आप जैसे सहृदय पाठकों से निवेदन है कि आपकी प्रिय पत्रिका हम आपकी सेवा में निरन्तर प्रेषित कर रहे हैं ताकि युगनिर्माता महर्षि दयानन्द सरस्वती के लोकोपकारी एवं धार्मिक सन्देश जन-जन तक पहुँच सकें तथा उन कल्याणकारी विचारों को पढ़कर प्रत्येक पाठक सदाचारी, धर्मप्रेमी एवं वैदिक विचारधारा का अनुयायी बनकर वर्तमान में प्रचलित पाखण्ड, अन्धविश्वास को छोड़कर बुद्धिजीवी, तार्किक एवं सत्यान्वेषी बनकर समाज में व्याप्त कुरीतियों, कुसंस्कारों से मुक्त रहे।

सज्जनो, हम इस पत्रिका की लाभ-हानि की बात नहीं कर रहे। इस निवेदन में केवल इतना जान लें कि पैसा भी किसी संस्था के प्रचार के लिए आवश्यक है। बहुत से महानुभावों का वार्षिक शुल्क हमें निरन्तर प्राप्त हो रहा है, परन्तु कुछ सदस्यों का शुल्क आता ही नहीं है, वर्षों तक रुका रहता है, पुनरपि उन्हें पत्रिका भेजी ही जाती है। अतः ऐसे सज्जनों से निवेदन है कि परोपकारिणी सभा के बैंक खाते में सदस्यता की रकम जमा कराकर इस पावन पत्रिका के निरन्तर प्रकाशन में आर्थिक सहयोग देकर इस धर्म के स्रोत को जारी रखने की कृपा करें।

आशा है आप महानुभाव वार्षिक शुल्क भिजवाकर हमारा उत्साह निरन्तर बढ़ाते रहेंगे।

अतिथि यज्ञ के होता बनें

महर्षि दयानन्द सरस्वती की उत्तराधिकारिणी परोपकारिणी सभा आर्य जगत् की एकमात्र ऐसी संस्था है जो सामूहिक सहयोग से ऋषि द्वारा निर्धारित लक्ष्यों की पूर्ति हेतु कृत संकल्प है।

सभा निरंतर प्रगति के पथ पर अग्रसर है। निरंतर अबाध गति से ऋषि उद्यान को आकर्षक एवं जन उपयोगी बनाने हेतु नव निर्माण करा रही है, वेद प्रचार पूरे देश में संचालित कर रही है, वेदों का एवं ऋषि ग्रंथों का प्रकाशन निरंतर जारी है।

प्रातः एवं सायं दैनिक यज्ञ– प्रवचन, वेद-पाठ, उपनिषद्, दर्शनादि शास्त्रों की कथा द्वारा वैदिक धर्म का कार्य नियमित रूप से आश्रम में चलता है। ***गुरुकुल***– आर्ष पद्धति से संचालित गुरुकुल में पढ़ रहे ब्रह्मचारी जो साधना एवं समाज सुधार का लक्ष्य लेकर अध्ययनरत हैं उनकी सभी आवश्यकताओं की पूर्ति निःशुल्क की जाती है। ***अतिथि सेवा***– अतिथियों को यथोचित सुविधा प्रदान करने हेतु सभा पूर्णरूपेण प्रयासरत है एवं सभी सुविधाएँ आवास, प्रातराश, भोजन की व्यवस्था निःशुल्क की जाती है। ***गोशाला***– गोशाला में चालीस के लगभग पशु हैं। इससे अधिक का स्थान नहीं है। आश्रमवासियों को गोशाला में उत्पादित दुग्ध का निःशुल्क वितरण किया जाता है। ***वानप्रस्थ एवं संन्यास आश्रम***– वानप्रस्थ एवं संन्यास आश्रम में रहकर साधनारत वानप्रस्थियों एवं संन्यासियों की सभी प्राथमिक आवश्यकताओं की पूर्ति सभा द्वारा निःशुल्क की जाती है। स्वाध्याय एवं साधना की व्यवस्था है। ***विशाल पुस्तकालय***– इसमें दुर्लभ ग्रंथों का संग्रह है, सभा द्वारा शोधकर्ता छात्रों को शोध कार्य हेतु ग्रंथ निःशुल्क प्रदान किए जाते हैं जिनका लाभ स्वाध्यायशील व्यक्ति भी उठा सकते हैं। ***व्यायामशाला***– योग्य शिक्षक द्वारा नगर के युवाओं को ऋषि उद्यान में निःशुल्क व्यायाम प्रशिक्षण दिया जाता है। सभा द्वारा नियुक्त व्यायाम शिक्षक आसपास के गांवों में भी आर्यवीर दल का प्रशिक्षण शिविरों में प्रदान करते हैं।

ये सभी क्रियाकलाप आपके पावन उदार सहयोग से ही संभव हैं। जैसा कि सर्वविदित है कि सभा का आधार ही आकाशीय दानवृत्ति है। आपको प्रतिदिन अतिथि मिलना संभव नहीं फिर अतिथि यज्ञ कैसे किया जाय इसका उपाय है, कुछ राशि प्रतिदिन अतिथि यज्ञ के नाम से निकाल ली जाये और उसको एकत्र कर अतिथि सत्कार में गुरुकुल में भोजन आदि के सहयोग में दे दी जाय।

सभा के धार्मिक क्रियाकलापों एवं आवासीय स्थल ऋषि उद्यान में उपर्युक्त पावन क्रियाकलाप लम्बे समय तक अबाध चलते रहें इसके लिए सभा की योजना है कि प्रतिदिन १० रुपये अथवा प्रतिवर्ष ५ हजार की राशि प्रदान करने वाले उदार यशस्वी दानदाताओं का नाम अतिथि यज्ञ के स्थायी सदस्यों में अंकित किया जाता है ऐसे सज्जनों के नाम का परोपकारी में प्रकाशन भी किया जाता है।

अनेक 'अतिथि यज्ञ के होता' सदस्यों का आग्रह है, निश्चित तिथि जन्मदिन, विवाह वर्षगांठ या विशेष अवसर पर वे अपनी ओर से संस्था में भोजन कराना चाहते हैं। ऐसे महानुभावों से निवेदन है कि वे अतिथि यज्ञ के होता के रूप में एक दिन के भोजन व्यय की राशि लगभग पाँच हजार एक सौ रुपये भेजते हुए इच्छित दिन का विवरण सूचित करेंगे तो उसका उल्लेख आश्रम के सूचना पट्ट पर किया जा सकेगा।

यह अल्प राशि आप दैनिक संचय घट में जमा भी कर सकते हैं, वर्ष में लोग अरबों रुपए आग में पटाखे जलाकर व्यय करते हैं, असावधानी से बिजली जलती छोड़ इसे गंवा देते हैं आदि ऐसी छोटी-छोटी असावधानियों को रोक कर हम उसकी बचत राशि इस पावन कृत्य हेतु सभा को वर्ष में आसानी से दे सकते हैं।

सभा शिविरों के आयोजन द्वारा जन सामान्य को ऋषियों की जीवन प्रणाली सिखा रही है। आप इस योजना में स्थायी सदस्य बनकर ऋषि का संकल्प *संसार का उपकार* की पूर्ति में एक स्तम्भ बनकर सभा को सम्बल प्रदान कर सकते हैं।

यदि अपने सामर्थ्य के अनुसार राशि को न्यूनाधिक करना चाहें तो आपकी स्वतन्त्रता है अधिक से अधिक लोग परोपकारिणी सभा से जुड़ सकें, आप ऐसा करके ऋषि दयानन्द के कार्यों को आगे बढ़ाने में सहायक होंगे इसलिए ऐसी राशि निश्चित की है। आप से प्रार्थना है अपना नाम पता और संकल्प लिखकर अवगत करायें और अतिथि यज्ञ के होता बनें। अपनी राशि प्रतिमाह अथवा सुविधानुसार मनीआर्डर/डीडी/चैक द्वारा अथवा स्वयं उपस्थित होकर कार्यालय में जमा करा सकते हैं। आपका दान ८०जी (आयकर की धारा) के अंतर्गत कर मुक्त होगा।

अतः आपसे निवेदन है कि आप भी अतिथि यज्ञ के होता बनिये। जिन महानुभावों ने हमारा निवेदन स्वीकार कर यज्ञ में अपनी आहुति दी है, उनके नाम यहाँ प्रकाशित किये जा रहे हैं।

अतिथि यज्ञ के होता

(१६ से ३० सितम्बर २०१८ तक)

१. श्री शिवकुमार कुर्मी, जयपुर २. श्री शिवकुमार मदान, नई दिल्ली ३. स्वस्तिकॉम चैरिटेबल ट्रस्ट, अमरावती, महा. ४. श्री सुरेन्द्र कुमार सिंगला, चण्डीगढ़ ५. श्रीमती राजबाला/अजय कुमार विजय कुमार, पचहंडा, मुजफ्फरनगर, उ.प्र.।

– परोपकारिणी सभा, अजमेर।

गोभक्तों से निवेदन

ऋषि-उद्यान में परमार्थ हेतु गौशाला संचालित है। गोशाला की गौवों के दूध का वितरण सभी गुरुकुलवासियों, संन्यासियों एवं आगन्तुक अतिथियों में नि:शुल्क किया जाता है। आप सभी गौ-भक्तों एवं उदारमना दानदाताओं से सभा का निवेदन है कि गौवों को उत्तम चारा मिले, इसके लिए जो भी सज्जन चारा दान देना चाहें उनका स्वागत है। यदि आप दूरस्थ प्रदेश के हैं तो कृपया चारे हेतु अनुमानित राशि सभा को ड्राफ्ट/चैक/नगद भेज सकते हैं। यशस्वी दानदाताओं के नाम परोपकारी पत्रिका में प्रकाशित किए जाएँगे। आपका दान गौवों के संवर्धन में सहायक होगा।

ऋषि-उद्यान में संचालित गौशाला के दानदाता

(१६ से ३० सितम्बर २०१८ तक)

१. श्री शिवकुमार कुर्मी, जयपुर २. कैप्टन चन्द्रप्रकाश, कमलेश त्यागी, रुड़की, हरिद्वार ३. माता सरोज, अजमेर ४. श्री कँवरसिंह/सन्तोष, सोनीपत, हरियाणा।

– परोपकारिणी सभा, अजमेर।

लेखकों से निवेदन

परोपकारी में उन लेखों, कविताओं, रचनाओं को स्थान दिया जाता है, जो **मौलिक व अप्रकाशित** हों। अत: सभी लेखकों से निवेदन है कि वे अपनी उन्हीं रचनाओं को भेजें जो मौलिक व अप्रकाशित हों।

अनेक लेखक मौलिक व अप्रकाशित रचना तो भेजते हैं, किन्तु उसे एक साथ **अनेक पत्रिकाओं को भेजते हैं।** अत: लेखकों से यह भी निवेदन है कि वे कृपया परोपकारी को वे ही रचना भेजें, जो अन्य पत्रिकाओं के लिए न भेजी हों। परोपकारी में छपने के बाद यदि अन्यत्र भेजना चाहें तो यह उनकी इच्छा पर निर्भर करता है।

कृपया लेख के अन्त में अपना **पूरा पता व चल-दूरभाष संख्या अवश्य लिखें।** लेख के स्वीकृत-अस्वीकृत होने की सूचना चल-दूरभाष पर संक्षिप्त संदेश द्वारा प्रेषित कर दी जायेगी। **परोपकारिणी सभा द्वारा रचनाओं के लिए किसी प्रकार का भुगतान नहीं किया जाता है।**

रचयिता अपनी रचना की एक प्रति कृपया अपने पास रखकर भेजें, क्योंकि **अस्वीकृत रचनायें डाक द्वारा लौटाई नहीं जाती हैं।** स्वीकृत रचना परोपकारी के किसी आगामी अङ्क में देखी जा सकती है। रचना के प्रकाशन में छ: माह या अधिक समय भी लग सकता है, अत: कृपया तब तक रचना को अन्यत्र न भेजें।

-संपादक

'परोपकारी' के ही पुराने अंक से....

मैं ऋषि का आदर क्यों करता हूँ?

अध्यापक ज़हूर बख़्श

स्व. श्री ज़हूर बख्श हिन्दी के कथा सम्राट मुंशी प्रेमचन्द के सहयोगी अध्यापक थे। वे हिन्दी के उत्कृष्ट लेखक माने जाते हैं। उनकी हिन्दी सेवा को देखकर उन्हें 'हिन्दी कोविद' की उपाधि प्रदान की गई थी। उन्होंने देवी सीता, नल-दमयन्ती, देवी पार्वती, देवी सती, इतिहास की कहानियाँ, भारत के सपूत, परोपकारी हातिम तथा कुछ अन्य पुस्तकों का प्रणयन किया। ये सभी पुस्तकें गंगा ग्रन्थालय, लखनऊ में उपलब्ध थीं। प्रस्तुत लेख 'आर्य मित्र' के २७ नवम्बर, १९२७ के ऋषि अंक में प्रकाशित हुआ था। इससे पूर्व सन् १९२७ ई. में भी महर्षि दयानन्द विषयक एक लेख 'ऋषि का ऋण' शीर्षक से 'आर्य मित्र' में छपा था। इन दोनों लेखों की चर्चा बहुत फैल गई थी। इससे सिद्ध है कि वे हठी, दुराग्रही, साम्प्रदायिक व पक्षपती न थे और सत्य के सच्चे उपासक थे। इसका मूल्य भी उन्हें चुकाना पड़ा। भोपाल में साम्प्रदायिक लोगों ने उनके घर पर आक्रमण किया व वे उसी आक्रमण का शिकार हुए। -डॉ. धर्मवीर (पूर्व सम्पादक)

आज मेरे समक्ष यह प्रश्न उपस्थित है कि मैं ऋषि का आदर क्यों करता हूँ? इच्छा न रहते हुए भी, मुझे इस सरल प्रश्न का उत्तर देने के लिये विवश होना पड़ा है। मेरा 'ऋषि का ऋण' शीर्षक लेख देखकर मेरे कई मित्रों को बड़ा आश्चर्य, कौतूहल और क्षोभ हुआ था। कई एकों ने तो मुझे दिल खोलकर फटकार भी दिखलाई थी। एक सनातनधर्मी महाशय ने कहा था- जिसने सनातनधर्म को तीन-तेरह कर डाला उसे आप हिन्दुओं का उद्धारकर्त्ता बतलाते हैं-इससे बढ़कर अज्ञान की बात और क्या होगी? दूसरे महाशय जो सुलेखक और विशेष विचारवान् होने का दम भरते हैं, कहते थे-'पुरस्कार में दस-पाँच रुपये फटकार लिए होंगे- इसी से ऐसा लिख मारा, आदमी रुपये के लिये क्या नहीं कर डालता?' यह सुन तीसरे सज्जन ने फ़रमाया-'सो तो सही है और आजकल हिन्दू-पत्रिकाओं ने आपके लेख छापना भी बन्द कर दिया है, फिर बेचारे आर्यसमाजियों के यहाँ चक्कर न काटें, तो क्या करें?' एक आर्यसमाजी महाशय ने कहा था-'आश्चर्य है कि ऋषि पर ऐसा पवित्र भाव रखते हुए भी आप अब तक मुसलमान बने हुए हैं-अब तक तो आपको अपनी शुद्धि करा लेनी चाहिए थी।' तब दूसरे ने कहा-'अच्छा, यह तो बतलाइए कि ऋषि का यह गुणगान करने में आपको कितना मेहनताना मिला है?' तीसरे समझदार सज्जन ने सम्मति दी-'यदि आपने किसी मुस्लिम-पत्रिका में यह लेख छपाया होता, तो उत्तम होता- कम से कम आपके मुसलमान भाइयों की आँखें तो खुल जातीं।' एक सजातीय भाई कहते थे- जिसने इस्लाम की जड़ पर कुल्हाड़ी चलाने वाला एक फ़िरका खड़ा कर दिया- आप उसी की तारीफ़ के पुल बाँधने बैठ गये। अफ़सोस!' मुस्लिम भाई की बात जाने दीजिए, लेख लिखने के पूर्व इस बात अनुभव भी न हुआ था कि मुझे हिन्दू नामधारी सज्जनों से ऐसे व्यङ्ग्य-वचन पुरस्कार में प्राप्त होंगे। 'ऋषि के ऋण' पर मुझे क्या पुरस्कार मिला था, यह तो मेरे और सम्पादक 'आर्यमित्र' के बीच की बात है।[१] हिन्दू- पत्रिकाएँ मेरे लेख अब भी छापती हैं या नहीं, इसके कहने की भी ज़रूरत नहीं। **रही यह बात कि ऋषि दयानन्द हिन्दू जाति का उद्धारकर्त्ता था, सो इस पर तो मेरा यही दृढ़ मत है, कि वह न केवल हिन्दू-जाति का, वरन् भारत का उद्धारकर्त्ता था। यदि हिन्दू जाति ने उसके मिशन का उद्देश्यपूर्ण तथ्य समझ लिया होता, तो भारत का न जाने, अब तक कितना उद्धार हो गया होता।**

ऊपर दी गई सम्मतियाँ किसी भी सहृदय व्यक्ति का हृदय मथने की पूर्ण शक्ति रखती हैं। मुझे इस बात का बड़ा ही दु:ख है कि 'ऋषि के ऋण' से दबी हुई पतित हिन्दू जाति के कितने ही पढ़े-लिखे, पर मुर्दा जीव मेरे लेख का तात्पर्य न समझ सके। सच पूछिए तो ऊपर दी हुई सम्मतियाँ मनुष्य की उस नाशकारी प्रवृत्ति का परिचय देती हैं, जो

उसे शनैः-शनैः उस अन्धकार में ले जाती है, जहाँ वह प्रकाश की एक क्षीण रेखा का दर्शन प्राप्त करने के लिये आकुल हो उठता है। अन्त में उस गहन अन्धकार में ही वह पञ्चतत्त्व को प्राप्त हो जाता है। भारतवासी क्रमशः उसी अन्धकार की ओर अग्रसर होते जा रहे हैं।

यह कितने दुःख की बात है कि यदि कोई हिन्दू महात्मा, ईसा या हज़रत मोहम्मद साहब के चरित्र पर मुग्ध होकर उनका आदर करे तो उससे कहा जाय- 'आश्चर्य की बात है कि आप अब तक ईसाई या मुसलमान नहीं हुए।' इसी प्रकार महर्षि दयानन्द की प्रशंसा करने वाले किसी अन्य धर्मी से 'आपने अभी तक अपनी शुद्धि क्यों नहीं कराई?' कहना अनुचित है, उसे परोक्षतया ऋषि की प्रशंसा करने से रोकना है। मेरा विश्वास है कि जो जाति या जो व्यक्ति गुणों का आदर करना व उनका अनुकरण करना जानता है, उसका पतन असम्भव है। हिन्दू जाति के पतन का एक कारण यह भी है कि उसने गुणों का मूल्य समझना व उनका अनुकरण करना छोड़ दिया है। हिन्दू जाति भंगी को अछूत एवं कमीन समझती है। अब कल्पना कीजिये कि किसी भंगी में बड़े ही सद्गुण हैं। उसका आचरण बड़ा पवित्र है। वह बड़ा ही नम्र एवं मधुर-भाषी है। बड़ा ही दयालु और परोपकारी है। बतलाइए, आप उसके इन गुणों की प्रशंसा करेंगे या निन्दा? उसके चरित्र को अनुकरणीय समझेंगे या नहीं? जब अपने चरित्र-बल से एक अस्पृश्य भंगी तक आदरणीय या अनुकरणीय हो सकता है, तब संसार के महापुरुषों के विषय में तो कहना ही क्या? उनका पावन-चरित्र, किसी जाति, सम्प्रदाय या राष्ट्र-विशेष की ही संपत्ति नहीं होता। उन पर कोई जाति, सम्प्रदाय या राष्ट्र भले ही गर्व कर ले, पर उन पर सारे संसार का आधिपत्य हो सकता है। सारे संसार के, प्रत्येक धर्म और समाज के व्यक्ति उनका सम्मान कर सकते हैं। आनन्दपूर्वक उनके चरित्र का अनुकरण कर अपना जीवन सफल कर सकते हैं। प्रसन्नता की बात तो यह है कि ऋषि दयानन्द का चरित्र इसी उच्चकोटि का था। अतः यदि चाहें तो संसार के सभी व्यक्ति अपने-अपने धर्म का पालन करते हुए भी उनका आदर कर सकते हैं। उनका अनुकरण कर अपना जीवन पवित्र बना सकते हैं। तब यदि मैं स्वामी दयानन्द का सम्मान करता हूँ, उनमें भक्ति भाव रखता हूँ तो क्या बुरा करता हूँ? क्या इसका यह मतलब हुआ कि मैं हज़रत मोहम्मद साहब को आदरणीय और अनुकरणीय नहीं समझता? मैं चाहूँ तो हज़रत मोहम्मद साहब के चरण-चिह्नों पर पथ-गमन करते हुए भी ऋषि पर भक्तिभाव रख सकता हूँ। अपने धर्म पर प्यार करते हुए भी मुझे ऋषि दयानन्द या उनके मिशन से द्वेष भाव रखकर अपने हृदय को कलुषित करने की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती।

ऋषि दयानन्द के देवोपम चरित्र में अनेक सद्गुणों का विकास इस प्रकार हुआ है कि वह मुझे बरबस अपनी ओर आकृष्ट कर लेता है। कुछ लोग महर्षि के जिस सद्गुण को एवं उसके विकास को दोष समझते हैं, उसे ही मैं एक महत् और आवश्यकीय गुण समझता हूँ। बालक मूलशंकर की शिवरात्रि सम्बन्धी घटना लेकर ऋषि दयानन्द की पुराण, कुरान, बाइबिल आदि की स्वतंत्रालोचना तक, लोग उन पर विचार-स्वातन्त्र्य और अन्य धर्मों की ओर घृणात्मक दृष्टि का लाच्छन लगाते हैं, परन्तु उसने कब और कहाँ अन्य धर्मों पर घृणात्मक दृष्टि की है, मुझे तो इसका पता नहीं चलता। उसने यह तो कहीं नहीं कहा कि अमुक धर्म बुरा एवं घृणा योग्य है, अतः उस धर्म के अनुयायी उसे मानना छोड़ देवें। उसने 'सत्यार्थप्रकाश' में अन्य धर्म-सम्बन्धी जिन ग्रन्थों की आलोचना की है, वह उसके विचार-स्वातन्त्र्य का सुन्दर उदाहरण है। स्मरण रखना चाहिए कि विचार-स्वातन्त्र्य कोई भयंकर वस्तु नहीं। उसी से संसार में युगान्तर उपस्थित होता है। वही संसार को उत्थान के मंच पर ले जाता है। विचार-स्वातन्त्र्य से घबराना कोरी कायरता है। यदि ऋषि ने 'सत्यार्थप्रकाश' में अन्य धर्मों की स्वतन्त्रालोचना की है, तो पुण्य-कर्म ही किया है। अन्य धर्मवालों को उससे न घबराना चाहिए, न चिढ़ना ही चाहिए। उनका कर्त्तव्य है कि वे स्थिर चित्त से उस पर विचार करें और उन्हें यदि ऋषि के बतलाए हुए दोष ठीक जँचें तो प्रसन्नतापूर्वक अपने धर्म का संस्कार करें। इससे तो उन्नति ही होगी। **अतः ऋषि की विचार-स्वतन्त्रता पुण्य वस्तु है। संसार उससे लाभ उठा सकता है। क्या ऋषि का यह गुण सम्मान योग्य नहीं?**

ऋषि के हृदय में अदम्य साहस की वेगवती सरिता

प्रवाहित हो रही थी। संसार के सामने अपने स्वतन्त्र विचार प्रस्तुत कर उसने यह भली-भाँति दर्शा दिया कि साहस कैसी वस्तु होती है। विचारों के अनुकूल चलना सरल कार्य नहीं है। दुनिया में ऐसी आत्माओं की कमी नहीं है, जो विचार तो कुछ रखती हैं पर आचरण दूसरे ही प्रकार का करती हैं। ऋषि ऐसी आत्माओं से परे था- अत्यन्त उच्च था। उसके विचार सदा कार्य रूप में ही प्रदर्शित होते थे। अपने निर्भीक विचार प्रकट करने तथा उनके अनुकूल आचरण करने में उनकी वेगवती कर्मधारा कभी कुण्ठित गति को प्राप्त नहीं हुई। उन दिनों आर्त भारत अज्ञानान्धकार में सुप्त हो रहा था। बड़े-बड़े धर्मधुरीण विद्वान् और कर्मठ पण्डित पुरानी लीक पीटने में ही अपना गौरव समझते थे। ऋषि जानता था और भली-भाँति जानता था कि मेरे विचार सुनकर भारतीय समाज में तहलका मच जायेगा। सारा भारत मेरा विरोध करेगा। अनेक अज्ञानी जीव मेरे शत्रु बन जायेंगे। कोई मेरी वाणी सुनने को तैयार न होगा, पर इन बातों से वह हतसाहस नहीं हुआ। वह खूब बोला-सिंह के समान गरजा। देश के विरुद्ध रहने पर भी अपना स्वर ऊँचा चढ़ाना साधारण साहस का कार्य नहीं है। क्या ऐसा अपूर्व साहस, सम्मान की वस्तु नहीं है?

अन्त में वही हुआ, जो बहुधा ऐसे महात्माओं के साथ हुआ करता है। प्रायः सारा भारत उसे शत्रु रूप में देखने लगा। मुसलमान उससे असन्तुष्ट हुए, ईसाई और जैनी उससे बिगड़े और सनातन-धर्मी तो उसके पीछे सत्तू बाँधकर ही पड़ गए। उसे अपमानित और त्रस्त करने में कितने प्रयत्न नहीं किये गए, पर ऋषि के पवित्र जीवन पर इन कुचेष्टाओं का रत्ती भर भी प्रभाव न पड़ा। उसके हृदय में निमिष मात्र के लिये भी म्लान भाव उत्पन्न न हुआ। उसके हृदय में विश्व-प्रेम की विमल धारा प्रवाहित हो रही थी। क्या शत्रु, क्या मित्र, सभी उसकी दृष्टि में एक समान थे। उसके पवित्र प्रेम की वर्षा सभी पर एक समान होती थी। 'वसुधैव कुटुम्बकं' उसकी प्रधान नीति थी। क्या आर्य, क्या मुसलमान, क्या जैनी, क्या ईसाई और क्या सनातनी, सभी के लिये उनके विशाल एवं पवित्र हृदय में एक समान प्रेम की भावना विद्यमान थी। उनके इस अपूर्व विश्वप्रेम से, वे अछूत भी, जिन्हें आज भी अधिकांश भारतीय पशु से भी हीन समझते हैं, वंचित न रह सके। ऋषि उनके लिए मनुष्यत्व और धर्म का द्वार उन्मुक्त कर दिया। उसने धर्म के पाखण्डी ठेकेदारों को प्रेम का पाठ पढ़ाया और उन्हें बतलाया कि मनुष्य-मनुष्य सब एक समान हैं। मनुष्यत्व के नाते मनुष्य को चाहिए कि वह प्रत्येक मनुष्य पर प्रेम करना सीखे। **आज अछूत किस वस्तु को प्राप्त कर मुर्दे से जीवित हो रहे हैं? यह वस्तु ऋषि का वही विश्वप्रेम रूपी अमृत है और कुछ नहीं। क्या विश्व प्रेम की अपूर्व साधना भी सम्मान पाने योग्य नहीं है?**

यद्यपि ऋषि ने महात्माओं के योग्य कोई कौतूहलजनक चमत्कार भले ही न दिखलाया हो पर इसमें सन्देह नहीं कि वह भविष्यदर्शी अवश्य था। उसकी सूक्ष्म दृष्टि ने निश्चय ही यह देख लिया था कि भारत का भविष्य क्या है और उसे किस वस्तु की विशेष आवश्यकता पड़ेगी। इसीलिए उसने इस देश को जागृति का सन्देश सुनाया था। भले ही उस समय देश पर उसके सन्देश का विशेष प्रभाव न पड़ा हो और ऐसा होना अस्वाभाविक नहीं है, पर आज उसके सन्देश का मूर्तिमान स्वरूप दिखाई दे रहा है। स्वराज्य का स्वर ऊँचा हो रहा है, समाज का संस्कार किया जा रहा है, धर्म की बुराइयाँ दूर की जा रही हैं। क्या देश की चिन्ता करना, उसे उन्नति का मार्ग दिखलाना प्रशंसा योग्य अथवा आदरणीय कार्य नहीं है?

अस्तु, महात्माओं की विरुदावली गाना सरल कार्य नहीं है, उसके लिए विशेष समय और योग्यता की आवश्यकता होती है। ऋषि के चरित्र की खूबियों का विश्लेषण करना तो विद्वानों और भक्तों का ही कार्य है, सो हम यहाँ दोनों श्रेणियों से बाहर हैं, पर ऊपर लिखे कुछ गुण ऐसे हैं, जिनका मुझ पर विशेष प्रभाव पड़ता है और यही कारण है कि मैं ईश्वर की उस उज्ज्वल विभूति को आदर और श्रद्धा की दृष्टि से देखता हूँ।

टिप्पणी

१. अध्यापक जी को पुरस्कार देने की बात बिल्कुल ग़लत है। उन्होंने तो वह लेख हमारा विनम्र निवेदन स्वीकार करके ही भेजा था, जिसका पुरस्कार सिवाय हमारी हार्दिक कृतज्ञता के न कुछ था और न अब है।

पाठकों की प्रतिक्रिया

श्रीमान आनन्ददेव जी, सादर प्रणाम!

परोपकारी में 'सिद्धान्ती' जी पर आपका विस्तृत लेख पढ़ा, अच्छा लगा। धर्मवीर जी के संस्मरण ग्रन्थ में भी आपका लेख पढ़ा था, उसमें आपने मेरा भी उल्लेख किया है, अत: धन्यवाद। मैंने गुरुकुल झज्जर मई १९६१ में छोड़ा, आपने अपनी मेहनत से सरकारी सेवा में ऊँचा पद प्राप्त किया है, ऐसा मैंने सुना है। गुरुकुल की भट्टी में आप और हमारे जैसे आपके साथी तपकर बाहर निकले हैं, गुरुकुल ने हम सबमें आगे भी कुछ करने की प्रेरणा दी। आचार्य जी तपस्वी थे और देशभक्त थे, उन्होंने हमें भी तपस्वी और देशभक्त बनाया है परन्तु अब समय बहुत बदल गया है। अब देश-प्रेम के स्थान पर कुर्सी-प्रेम आ गया है, झूठे प्रेम में पड़कर हम देश के लिये न मरते हुए रेलगाड़ी के आगे कट-मर रहे हैं, हम 'चाँद मोहम्मद' बन रहे हैं। खैर आशा रखें, गुरुकुल के स्नातक अच्छा ही काम करेंगे।

मुझे अपने साथियों की याद आती है, धर्मव्रत जी, मनुदेव जी-चिकला, सत्यवीर जी, विष्णुदेव (दिवंगत), मेरे सहपाठी यशपाल, मनुदेव-रोजड़, जो स्व का ही विकास कर रहे हैं, जबकि आर्यसमाज का मुख्य उद्देश्य संसार का उपकार करना है।

- धर्मपाल मलवाड़े, सीताराम नगर, लातूर, महा.-४१३५३१

दयानन्द धर्मार्थ चिकित्सालय

परोपकारिणी सभा द्वारा संचालित ऋषि उद्यान में वर्ष २०१२ से आयुर्वेदिक चिकित्सालय चल रहा है। चिकित्सालय में उपलब्ध सभी औषधियाँ नि:शुल्क दी जाती हैं। डॉ. रमेश मुनि जी चिकित्सक के रूप में इस चिकित्सालय का कुशलतापूर्वक कार्यभार सम्भाल रहे हैं। चिकित्सालय का समय प्रात: ९ से ११ बजे तक है। रविवार का अवकाश होता है।

दानी महानुभावों से सहयोग की भी अपेक्षा है।

खाताधारक का नाम - परोपकारिणी सभा, अजमेर (PAROPKARINI SABHA AJMER)

१. बैंक का नाम-**भारतीय स्टेट बैंक, डिग्गी बाजार, अजमेर।**

बैंक बचत खाता **(Savings)** संख्या-**10158172715**

IFSC-SBIN0007959

२. बैंक का नाम-**आई.डी.बी.आई**, पावर हाउस के सामने, जयपुर रोड, अजमेर।

बैंक बचत खाता **(Savings)** संख्या-**091104000057530**

IFSC-IBKL0000091 email : psabhaa@gmail.com

ऋषि दयानन्द ने कहा था

विद्वान् एकमत हो प्रीति से वर्तें

यद्यपि आजकल बहुत से विद्वान् प्रत्येक मतों में हैं, वे पक्षपात छोड़, सर्वतन्त्र सिद्धान्त अर्थात् जो-जो बातें सबके अनुकूल सब में सत्य हैं, उनका ग्रहण और जो एक-दूसरे के विरुद्ध बातें हैं, उनका त्याग कर परस्पर प्रीति से वर्तें-वर्तावें तो जगत् का पूर्ण हित होवे। क्योंकि विद्वानों के विरोध से अविद्वानों (साधारण जनों) में विरोध बढ़कर अनेकविध दु:ख की वृद्धि और सुख की हानि होती है।

(स. प्र. भू.)

पं. प्रकाशचन्द्र 'कविरत्न' की जयन्ती आश्विन शुक्ल नवमी पर विशेष-

प्रतिभा की तलाश

- प्रभाकर

''नहीं निराकार की पूजा, प्रभु तो साकार सही है।'' से लेकर **''वेदों का डंका आलम में, बजवा दिया ऋषि दयानन्द ने।''** तक की यात्रा के यात्री पं. प्रकाशचन्द्र 'कविरत्न' का इस मास जन्मदिवस है। 'परोपकारी' अपने पाठकों को भूले-बिसरे रत्नों की याद दिलाने के लिये वर्ष भर लगा रहता है। उसी शृंखला की यह एक और कड़ी है।

समाज को सही दिशा देने के लिये उपदेश एक अच्छा साधन है। पुराने समय में, जब तक भारत पश्चिमी सभ्यता से प्रभावित नहीं था, तब यह विधि और भी अधिक प्रभावकारी थी। इसीलिये तो समाज का मुख कहे जाने वाले संन्यासी को एक जगह रुकने की अनुमति नहीं थी। बस चलते जाना है, जहाँ जो विकृति या समस्या दिखे उसका उचित समाधान कर देना है। यह उपदेश का सर्वाधिक प्रचलित तरीका है। यह तभी सम्भव है, जब हर गृहस्थ को हर दिन एक उपदेशक, विद्वान्, संन्यासी उपलब्ध हो- पर ऐसा प्रायः सम्भव नहीं होता, ना ही जन-सामान्य में उपदेशों के प्रति वैसी रुचि होती है। ऐसे में 'कला' इस धर्मोपदेश का सबसे बड़ा माध्यम बनकर उभरती है।

मनुष्य अपने दैनिक जीवन में सुबह से लेकर शाम तक सैकड़ों वस्तुओं एवं विधाओं का उपयोग करता है। वह बाहर से कुछ भी कहे पर व्यावहारिक तौर पर चयन उसी का करता है, जो कला-निर्माण व गुणवत्ता की दृष्टि से सबसे उत्कृष्ट हो। उदाहरण के तौर पर व्यक्ति बाहर से कितनी ही धर्म की बातें करता हो पर पुस्तक खरीदते समय उसी को चुनता है, जिसकी भाषा-शैली या विधा सबसे अच्छी हो। इसीलिये पुस्तक मेलों में सर्वाधिक खरीदारी उपन्यासों की होती है, धार्मिक पुस्तकों की नहीं। घरों को सजाने के लिये जिन चित्रों को लगाया जाता है, उनमें कितने महापुरुषों की झलक दिखाते हैं? नगण्य। भले ही घर का मालिक पूरे दिन आदर्शों की बात करता हो। साज-सज्जा के लिये हर घर की मेज पर महात्मा बुद्ध बैठे मिल जाते हैं, इसलिये नहीं कि परिवार बौद्धमतानुयायी है, बल्कि इसलिये कि कला की दृष्टि से वह देखने में सुन्दर है। मगर इस इसका मतलब यह भी नहीं कि सौन्दर्य बोध के अतिरिक्त उसका और कोई प्रभाव नहीं होता, जरूर होता है। कम से कम घर के हर व्यक्ति को यह तो जानकारी रहती है कि इस नाम का भी कोई व्यक्ति कभी हुआ था। बाद में उनकी लिखी किताबें, उनके विचार भी पढ़ ही लेता है।

एक सामान्य आदमी भी मौलिक एवं उत्कृष्ट संगीत और गीत सुनना पसन्द करता है। अच्छे गायक को सुनना पसन्द करता है। एक उपदेशक को सुनने के लिये जितनी भीड़ आती है उससे कहीं अधिक भीड़ सामान्य से व्यंग्यकार को सुनने के लिये आ जाती है। इसका मतलब यह नहीं कि उपदेशक महत्त्वपूर्ण नहीं होता, वह तो सर्वोपरि है ही, पर कला हमें किस कदर अपनी ओर खींचती है, केवल इतना समझाना ही इन पंक्तियों का उद्देश्य है।

बचाव में तर्क दिया जाता है कि दुनिया में अच्छी चीज़ हमेशा कम होती है, उत्कृष्ट वस्तु कम ही उपलब्ध होती है। कुत्ते, बिल्ली गली-गली में मिल जाते हैं पर शेर तो पूरे जंगल में एकाध ही होता है। अगर यही सच है तो फिर अच्छाई को और अधिक उत्कृष्ट क्यों नहीं बना देते? इस संसार में से अच्छाई को, वेद को, वैदिक मान्यताओं को दुर्लभ ही कर दो, ताकि उसे विश्व की सबसे महत्त्वपूर्ण वस्तु होने का तमगा पहनाया जा सके?

कुछ ऐसा ही तर्क आर्यसमाज के 'युवा सम्मेलनों' में सुनने को मिलता है, जब दूर-दूर तक भी कहीं काले बाल दिखाई नहीं पड़ते तो मंच से एक वाक्य बोला जाता है ''उम्र से कोई जवान नहीं होता, विचारों से जवान=युवा होता है, इसलिये हम सब युवा ही हैं।'' बात सही है, पर खुद को बचाने की नाकाम कोशिश मात्र है।

खैर, हम बात कर रहे थे कला की, जो कि मानव को बरबस अपनी ओर खींच लेती है। मगर ध्यान रहे, कला एक विधि या शैली है, विषय नहीं। विषय चुनना कलाकार के विचारों और उसकी इच्छा पर निर्भर है। कलाकार अच्छा हो तो विषय भी अच्छा और कला भी। और अगर कलाकार के विचार ही ठीक नहीं तो फिर कला वही करेगी, जो आज कर

रही है- बिगाड़ ही बिगाड़। जिस बात को मनवाने में महीनों के उपदेश कम पड़ जाते हैं, उसी बात को तीन घंटे की फिल्म (चलचित्र) घुट्टी की तरह पिला देती है।

मगर आर्यसमाज ने कला से अघोषित वैर पाल लिया है, उसे देश निकाला दे रखा है, इसीलिये आर्यसमाज में उसका विकास नहीं हो पाया। दयानन्द ने इस बात को समझकर कवि अमींचन्द की पीठ पर हाथ रखा, श्याम जी कृष्ण वर्मा को विदेश भेजा। दादा बस्तीराम ने पूरे हरियाणा को वैदिक धर्म के रंग में रंगा, चौधरी चरणसिंह ने राजनीति को वेदानुकूल कर दिया, पं. नारायण प्रसाद बेताब ने फिल्मों को शास्त्रों के आख्यान बना दिया, वैद्य गुरुदत्त ने साहित्य-प्रेमियों को उपन्यासों में आर्यसमाज परोसा, गुरुकुल कांगड़ी के स्नातकों ने अखबारों को दयानन्द की दृष्टि से देखना सिखा दिया, कवि प्रदीप की लिखी 'ऋषि गाथा' पर आर्यजन गर्व के मारे फूले नहीं समाते, चित्रकार प्रकाश आर्टिस्ट की पेन्टिग आँखों को हटने नहीं देतीं, बिस्मिल की शायरी आज भी हृदयों को झकझोर देती है और इस लेख के नायक पण्डित प्रकाशचन्द्र 'कविरत्न' की रचनाएँ आज पौराणिकों समेत पूरा भारत गाता है।

दयानन्द के बाद भारत में जो सबसे अच्छा था, वो आर्यसमाजी था। संगीत से साहित्य तक और कलम से कमान तक सब कुछ दयानन्द। पंडित लेखराम कहा करते थे कि जिस नगर-गाँव का सबसे बुद्धिमान् वर्ग आर्यसमाजी नहीं, वहाँ आर्यसमाज का होना ना होना एक सा है।

साल के ३ दिन का धार्मिक उपदेश ३६२ दिनों के अनैतिक संस्कारों को कैसे हटा सकता है? अपवाद मिल जाना अलग बात है। अगर रोज पैदा होते अनैतिक संस्कारों से लड़ना है तो नैतिकता भी उसी मात्रा में रोज परोसनी पड़ेगी। पर कैसे? वैसे ही जैसे बुरे संस्कार आते हैं-गीत में, संगीत में, हास्य में, साहित्य में, कहानी में, उपन्यास में, फिल्मों में, अखबारों में, यहाँ तक कि खिलौनों में भी आदर्श झलके और यह तभी संभव है, जबकि उस कला का पारखी, सिद्धहस्त वैदिक विचारों में रंगा हो या वैदिक विचारधारा वाले युवाओं को इन क्षेत्रों में प्रोत्साहन दिया हो। जो भी क्षेत्र हमारे जीवन और विचारों को प्रभावित करता है वह अच्छे विचार के प्रभुत्व में हो।

आचार्य डॉ. धर्मवीर जब प्रचार-यात्रा पर होते और उन्हें कोई उत्कृष्ट वस्तु दिखाई देती तो कहते-''यह हमारे यहाँ भी होनी चाहिये।'' गुजरात प्रचार-यात्रा के समय सभी लोग गाँधीनगर के अक्षरधाम मन्दिर भी गये, वहाँ शाम के समय 'फव्वारे पर लेजर शो' में नचिकेता की कथा को स्वामी नारायण मत से जोड़कर दिखाया गया। शो बहुत भव्य था, उसके समाप्त होने पर धर्मवीर जी उत्साह भरी वाणी से बोले कि दयानन्द के जीवन पर भी ऐसा होना चाहिये।

आर्यसमाज को अपनी विचारधारा जन-जन तक फैलानी है तो कला को प्रोत्साहन देना होगा। आज आर्यसमाज के पास एक भी संगीतज्ञ नहीं, सब फिल्मी गानों का कॉपी पेस्ट है, एक भी कहानी लेखक नहीं, उपन्यासकार नहीं, कवि नहीं, चित्रकार नहीं, पत्रकार नहीं, जो थोड़े बहुत हैं, उन्हें यथायोग्य सम्मान नहीं।

पंडित प्रकाशचन्द्र कविरत्न की जयन्ती पर वैसे तो उनके जीवन का परिचय लिखना चाहिये था, पर जो मन में आया, फिलहाल तो वही लिख दिया। घटनाओं की तारीखें देते तो अच्छा खासा कैलेण्डर बन जाता और अगर जीवन की घटनाएँ लिखते तो दूसरे के लिखे की नकल करके। फिर भी पंडित जी का अति संक्षिप्त जीवन इस प्रकार है-

जन्म- आश्विन शुक्ल नवमी संवत् १९६० वि. अजमेर

पिता -घोर पौराणिक कवि, आर्यसमाज से साँप-नेवले का सम्बन्ध। पुत्र प्रकाश भी उन्हीं के नक्शे कदम पर चलने वाला आर्यसमाज का बाल-शत्रु, जो कि आर्यसमाज की वेदी पर बैठकर भी यह गीत गाये-

'नहीं निराकार की पूजा, प्रभु तो साकार सही है।।'

बाद में आर्यसमाज के समाज-सेवा के कार्यों से प्रभावित होकर वैदिक धर्म में दीक्षित हो गये और वैदिक प्रचारक बन गये। वैदिक विचारधारा के प्रचार के लिये उत्कृष्ट काव्य रचनाएँ लिखीं, जिनमें से एक इतनी प्रसिद्ध हुई कि जहाँ भी जाते, वह गीत जरूर सुनाना पड़ता। उनके पास रियासतों के निमन्त्रण आते थे, केवल मात्र एक गीत सुनने के लिये और इस गीत पर संगीतज्ञ कवि प्रदीप का कण्ठ भी इतना मोहित हुआ कि बिना गाये रह ना सके। वह गीत था।

वेदों का डंका आलम में।।
बजवा दिया ऋषि दयानन्द ने।।

कविवर पंडित जी को कई रोगों ने घेरा, बैसाखी तक पर आ गये, पर उत्साह बरकरार रहा और अन्त में ११ दिसम्बर १९७७ को इस नश्वर देह को छोड़कर परमात्मा के काव्य में विलीन हो गये। उनकी जयन्ती से प्रेरणा लेते हुए, दयानन्द के सिपाही को शत शत नमन!

परोपकारिणी सभा द्वारा संचालित महर्षि दयानन्द आर्ष गुरुकुल ऋषि उद्यान में अष्टाध्यायी अनुक्रम से संस्कृत व्याकरण, दर्शन एवं अन्य ऋषिकृत ग्रन्थों की कक्षाएँ प्रारम्भ हो रही हैं। अध्ययन आर्ष पाठविधि से कराया जायेगा। विद्यार्थियों के आवास एवं भोजनादि का सम्पूर्ण व्यय सभा की ओर से किया जायेगा। गुरुकुल सम्बन्धी सभी नियमों एवं दिनचर्या आदि का पालन अनिवार्य होगा। विद्यार्थी की आयु न्यूनतम १६ वर्ष हो। इच्छुक छात्र निम्नलिखित पते पर सम्पर्क करें।

आचार्य, महर्षि दयानन्द आर्ष गुरुकुल,

ऋषि उद्यान, पुष्कर मार्ग, अजमेर-३०५००१ (राज.)

सम्पर्क-०१४५-२४६०१६४, Email- psabhaa@gmail.com

अपील

'सत्यार्थप्रकाश' जैसी क्रान्तिकारी पुस्तक के प्रति किस आर्य की श्रद्धा नहीं होगी और कौन वैदिकधर्मी यह नहीं चाहेगा कि यह पुस्तक हर मनुष्य के हाथ में होनी चाहिये? आर्यों की इस तीव्र अभिलाषा को परोपकारिणी सभा गत ५ वर्षों से साकार रूप देने में प्रयासरत है। साथ में यह भी चाहती है कि यह अमूल्य पुस्तक आकार-प्रकार में भी आकर्षक ही हो। इन सबको ध्यान में रखकर सभा ने विश्व पुस्तक मेले में इसे ऐसे व्यक्तियों में वितरित करने का निश्चय किया जिन तक यह अभी नहीं पहुँच पाई थी। इस कार्य में परोपकारिणी सभा तो एक माध्यम मात्र है, मुख्य वितरक आर्यजन ही हैं। विश्व पुस्तक मेला- २०१९ का कुछ ही समय शेष है। अत: आर्यों से अपील है कि अधिक से अधिक लोगों तक सत्यार्थ पहुँचे, इसके लिये मुक्त हस्त से सहयोग करें। सत्यार्थप्रकाश के साथ-साथ महर्षि दयानन्द सरस्वती का जीवन-चरित्र भी नि:शुल्क वितरित किया जायेगा। आप जितनी प्रतियाँ अपनी ओर से बंटवाना चाहें, उतनीं पुस्तकों पर आपका नाम छापा जायेगा।

एक प्रति की लागत- १००रु.

खाताधारक का नाम - परोपकारिणी सभा, अजमेर (PAROPKARINI SABHA AJMER)

१. बैंक का नाम-**भारतीय स्टेट बैंक, डिग्गी बाजार, अजमेर।**

बैंक बचत खाता **(Savings)** संख्या-**10158172715**

IFSC-SBIN0007959

२. बैंक का नाम-**आई.डी.बी.आई**, पावर हाउस के सामने, जयपुर रोड, अजमेर।

बैंक बचत खाता **(Savings)** संख्या-**091104000057530**

IFSC-IBKL0000091 email : psabhaa@gmail.com

परोपकारिणी सभा द्वारा आयोजित ऋषि मेले में आप सभी आमन्त्रित हैं।

१६, १७, १८ नवम्बर २०१८, **सम्पर्क**- ०१४५-२४६०१६४

आर्यजगत् के समाचार

१. प्रतिभाओं का सम्मान– जयपुर में आयोजित आपदा प्रबन्धन के राष्ट्रीय वर्कशॉप एवं अवार्ड समारोह में समाज सेवा के क्षेत्र में छोटी उम्र में कीर्तिमान स्थापित करने वाली वैदिक वीरांगना दल की राष्ट्रीय अध्यक्ष अनामिका शर्मा व कैप्टन अदिति सामन्त को सम्मानित किया गया। बनीपार्क में आयोजित कार्यक्रम के मुख्य अतिथि मेजर जनरल डॉ. सुभाष पारीक (ईडी महावीर कैंसर हॉस्पिटल) थे। कार्यक्रम की अध्यक्षता आपदा प्रीसेफ्टी प्रोफेशनल्स एसोसिएशन ऑफ इंडिया के राष्ट्रीय अध्यक्ष प्रो. ए.के. सिंह ने की। कार्यक्रम की विशिष्ट अतिथि आईपीएस प्रभजोत कौर थीं।

२. चतुर्वेद पारायण यज्ञ सम्पन्न– २६ अगस्त २०१८ को श्रावणी उपाकर्म (रक्षाबन्धन) के अवसर पर डॉ. सुदर्शन देव आचार्य के सान्निध्य में तथा श्री दिलीप कुमार जिज्ञासु के ब्रह्मत्व में नवम चतुर्वेद पारायण महायज्ञ का शुभारम्भ हुआ तथा गुरुकुल में अध्ययनरत २७ ब्रह्मचारियों का उपनयन व वेदारम्भ (विद्यारम्भ) संस्कार, गुरुकुलीय ब्रह्मचारियों के द्वारा 'ईश्वर एक नाम अनेक', 'चोटी यज्ञोपवीत की महत्ता' से सम्बन्धित नाटिका तथा 'राजा भोज के साथ जुलाहा एवं लकड़हारा' के संवाद का संस्कृत नाटिका प्रदर्शन किया गया। महायज्ञ की पूर्णाहुति ९ सितम्बर २०१८ को हुई। पन्द्रह दिवसीय ५ से ६ घण्टे चलने वाले महायज्ञ में प्रतिदिन नये-नये यजमान दम्पती उपस्थित होकर लगभग १५०० मन्त्रों से आहुति प्रदान करते थे।

३. वेद प्रचार सप्ताह मनाया– आर्यसमाजी खलासी लाइन, सहारनपुर के प्रांगण में ६५वाँ वेद प्रचार सप्ताह धूमधाम से मनाया गया। कार्यक्रम में संन्यासी यज्ञमुनि जी के प्रवचन हुये। भजनोपदेशक वीरेन्द्र मिश्रा ने वातावरण को भक्तिमय बनाया। कार्यक्रम की अध्यक्षता नवादा से पधारे चौधरी रणधीरसिंह ने की। मंच संचालन डॉ. पूर्णचन्द्र शास्त्री एवं डॉ. राजवीर सिंह वर्मा ने किया। नगर निगम के मेयर श्री संजीव वालिया ने कार्यक्रम की सराहना की।

४. वैदिक प्रतिभा सम्मान– आर्यसमाज राजगढ़, अलवर, राज. के तत्वावधान में पं. नारायण सहाय दीक्षित चैरीटेबल ट्रस्ट की ओर से १०३वें जन्मोत्सव के उपलक्ष्य में राज. उ.प्रा. विद्यालय इमाम चौक में वैदिक प्रतिभा सम्मान समारोह का आयोजन किया गया। इस अवसर पर ८० वर्ष से अधिक के आर्य भद्रपुरुषों में से गोपालसिंह आत्रेय को तथा आर्यसमाज के कार्यक्रम में सर्वाधिक उपस्थिति के लिए जमुनादेवी आर्य को शाल ओढ़ाकर सम्मानित किया गया। इसके अलावा विद्यालय में अध्ययनरत सभी छात्र-छात्राओं को पाठ्य-सामग्री का वितरण किया गया।

५. पुरोहित की आवश्यकता– आर्यसमाज, लाला लाजपतराय चौक, नागौरी गेट, हिसार, हरियाणा के लिये योग्य पुरोहित की आवश्यकता है। पुरोहित यज्ञ एवं सम्पूर्ण वैदिक संस्कार करवाने में पूर्ण सक्षम व कुशल हो। निवास की व्यवस्था आर्यसमाज की ओर से ही रहेगी एवं उचित मानदेय भी दिया जायेगा। इच्छुक विद्वान् सम्पर्क करें- ९०३४४४४८९८, ०१६६२-२३३३३९

चुनाव समाचार

६. आर्यसमाज नकुड़, जिला सहारनपुर, उ.प्र. के चुनाव में **प्रधान**- श्री अनिल कुमार गुप्ता, **मन्त्री**- श्री भूपेन्द्र कुमार आर्य, **कोषाध्यक्ष**- डॉ. शिव कुमार आर्य को चुना गया।

मनुष्यों को चाहिये कि पुरुषार्थ से विद्या का सम्पादन, विधिपूर्वक अन्न और जल का सेवन, शरीरों को नीरोग और मन को धर्म में निवेश करके सदा सुख की उन्नति करें।

-महर्षि दयानन्द, यजुर्वेद, भावार्थ ८.१४